हिमालय के आँसू

आनन्द मिश्र

देव-पुरस्कार द्वारा सम्मानित काव्य-कृति

.नाथ काटजू
अध्यक्ष

१९६०

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
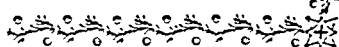
प्रथम संस्करण
सितम्बर, १६६१

प्रकाशक :
राजपाल एण्ड सन्ज़
पोस्ट बाक्स १०६४, दिल्ली
●
कार्यालय व प्रेस :
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२
●
बिक्री-केन्द्र :
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य
रुपये

मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्

प्रशस्ति-पत्र

श्री आनन्द मिश्र

को

सन् १९५९-६० के लिए पुरस्कारार्थ घोषित

"सर्वोत्कृष्ट पद्य"

विषय के अन्तर्गत

"हिमालय के आँसू"

ग्रंथ पर उनकी साहित्य-सेवा की सराहना करते हुए

मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्

२१०० रु० (दो हज़ार एक सौ रुपये)

का

"देव-पुरस्कार"

सम्मानपूर्वक प्रदान करती है।

वृ० ना० पंडित — सचिव

कैलाशनाथ काटजू — अध्यक्ष

भोपाल, दि० १-११-१९६०

महामानव निराला की सेवा में
यह अकिंचन कृति
सादर

निवेदन

"कविता की अगली राहें जुही और चमेली के कुंज से होकर नहीं, प्रस्तुत समर्थ बुद्धि की कड़ी चट्टान पर से होकर जानेवाली है।"

प्रस्तुत काव्य-संग्रह 'हिमालय के आंसू' के प्रारम्भिक निवेदन के रूप में कुछ कहने से पूर्व सहसा मुझे 'चक्रवाल' की भूमिका से कविवर दिनकरजी का उपर्युक्त वाक्य स्मरण हो आया है। मैंने दिनकरजी के इस मत को हिन्दी की नई कवि-पीढ़ी के प्रति दिशा-संकेत की तरह स्वीकार किया है। यह ध्वनि मेरे अंतर्मन तक पहुँची है, और मैं जुही-चमेली के कुंज तथा समर्थ बुद्धि की कड़ी चट्टान के बीच सामंजस्य का दर्शन करना चाहते हुए भी दिनकरजी के इस मत से अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। हाँ, मैं अपनी बात कुछ इस तरह कहना चाहूँगा कि हमारी आगामी कविता तभी समर्थ एवं सार्थक कही जा सकेगी, जब जुही-चमेली का कुंज कड़ी चट्टान पर लहलहाएगा, जब अंकुर धरती की छाती फोड़कर निकलेंगे और उनमें फौलाद की डालियों पर रूप, रस और गंधवाले फूल मुस्कराएंगे।

'साधना' के नाम से मेरा प्रथम काव्य-संग्रह १६५२ में प्रकाशित हुआ था। १६५० से लिखना आरम्भ किया। फिर १६५७ में 'चन्देरी का जौहर' तथा 'झाँसी की रानी' मेरे दो प्रबन्ध प्रकाशित हुए। और अब 'हिमालय के आंसू' के नाम से मेरी ६१ कविताओं का यह संकलन प्रकाशित होने जा रहा है। 'हिमालय के आंसू' को हाल ही में मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् द्वारा देव-पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया है।

नहीं जानता कि मैं अच्छी कविता लिख भी पाता हूँ या नहीं। इसके निर्णय का अधिकार भी लेखक का नहीं होता। मेरे आत्मतोष का आधार-मात्र इतना ही है कि मैंने अब तक जो कुछ भी लिखा है, उसका अधिकांश कर्तव्य जानकर लिखा है, ईमानदारी से लिखा है, सोद्देश्य लिखा है। यह ठीक है कि मैं अपनी इस ग्यारह वर्षों की साहित्यिक यात्रा के विषय में बहुत कुछ कहना चाहता हूँ, पर यह कल की बात है। आज मेरा मौन रह जाना अधिक श्रेयस्कर है।

राजपाल एण्ड सन्ज़ के व्यवस्थापक श्री विश्वनाथ भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके सहयोग से यह कृति इतने भले रूप में पाठकों की सेवा तक आ रही है।

अभावों के लिए क्षमा-प्रार्थी—

ग्वालियर
१ जुलाई, १६६१

सबका
आनन्द मिश्र

क्यों लिखता हूँ ?

तुमने पूछा यह प्रश्न कि मैं क्यों लिखता हूँ ?
क्यों चौराहों पर भीड़ जोड़कर गाता हूँ ?
क्यों कभी सितारों से बातें करता हूँ मैं,
क्यों कभी धरा की धूल स्वर्ण बतलाता हूँ ?

रंगीन स्वप्न यह नहीं, सचाई है साथी !
जो कुछ कहता हूँ, वह मेरा अपनापन है,
सुन्दर है सुन्दर, किंतु उपेक्षित जो कुरूप,
उसको सुन्दरतम बतलाता मेरा मन है।

तुम कह दोगे, यह झूठ, कहो, सुन लेता हूँ,
लेकिन मन की कहता हूँ, आदत है मेरी,
तुम बहते हो नैया में, मैं मझधारा में,
दोनों जाएँगे पार, मुझे होगी देरी !

लेकिन क्या करूँ, मुझे यह राह अधिक भाई,
सीधा पथ छोड़, चला हूँ मैं उलझे पथ पर,
अपना-अपना मन है, मैं पैदल चलता हूँ,
तुमको आना है आओ सोने के रथ पर !

कब कहता हूँ मुझको भी साथ बिठा लो तुम,
है ज्ञात मुझे, पैदल चलने लग जाओगे,
इसलिए कि बिन काँटों के मधुवन सूना है,
तुम भी पाँवों के छाले गले लगाओगे।

मैंने तारों पर गीत लिखे, उनमें मुझको,
अपने अन्तर की जलन दिखाई देती है,
फूलों की भरी जवानी को गाया मैंने,
इनमें मेरी साधें अँगड़ाई लेती हैं।

बिजलियाँ मुझे उत्साह दिया करतीं पथ में,
कोयल की कूक नई सिहरन भर देती है।
मेघावलियां भावों में पंख लगा देतीं,
पावस की झड़ियाँ हृदय हरा कर देती हैं।

क्या उत्तर दूं सूरज दिन-भर क्यों जलता है ?
क्या मिला उसे जग आलोकित कर जाने में ?
क्या मिलता है दीपक को, अपनी देह जला—
हारे पंथी को निशि-भर राह दिखाने में ?

इसका इतना उत्तर केवल हो सकता है,
अपनी आदत है, बस अपना-अपना मन है,
जो लेते नहीं, सदा कुछ देते आए हैं,
उनके बल पर ही तो खिलता यह मधुवन है।

मैं सबसे करता प्यार मगर उनसे ज्यादा,
जो यहाँ मौत का नियम बदलने जीते हैं,

मुरझाते हैं, लेकिन मुरझाकर खिलते हैं,
जो बासी नहीं, हमेशा ताज़ी पीते हैं।

ऐसे जीनेवालों पर मुझे तरस आता,
जो मुश्किल को ही मौत समझ मर जाते हैं,
कठिनाई तो मंज़िल की पहली सीढ़ी है,
लगता है बुरा कि क्यों गलती कर जाते हैं।

तब मेरा विद्रोही मन मथने लगता है,
गीतों की धार फूटकर बहने लगती है,
इन्सान इस तरह जियो कि मौत चरण चूमे,
जागो तन्द्रा से, वाणी कहने लगती है।

भावना नहीं है यह केवल मेरे मन की,
कर्तव्यपरायणता कहती है, गाता चल,
हाँ, ठेकेदारी है तेरी दुनिया-भर की,
भयभीत न हो, वज्रों को गले लगाता चल।

संसार कहाँ करता परवाह किसी की भी,
जो छोड़ सके पद-चिह्न, वही तो जीवित है,
जो बुझे भले, पर दीप जला जाए अनगिन,
वह बुझता नहीं कभी, वह तो चिरदीपित है।

जो जीवन में विश्वास, प्रीति दृढ़ लिए हुए,
जो अंधकार को नित चीरे, वह है सविता,
बस यही सत्य मैंने पहचाना है अब तक,
जिसका अनुवाद किया करती मेरी कविता।

मैं तुमसे पूछ रहा हूँ, वतला सकते हो,
मोती लाए हो, याकि सतह पर तिरते हो ?
देखा है कभी डूबकर इस गहराई को,
या केवल लहरें देख-देखकर डरते हो ?

मैं डूबा हूँ, लाया हूँ मोती, पिरो रहा,
तुम देख रहे यह उनकी ही तो माला है,
यह सच है, इसमें नहीं सुरा की मादकता,
पर कुन्दन तुम्हें वना दे ऐसी ज्वाला है !

तुम चलना चाहोगे अव मुझसे कतराकर,
इसलिए कि पाप शीप चढ़ वोला करता है,
इसलिए कि तुम पीते हो केवल सुरा-सुरा,
मेरा कवि उसमें लावा घोला करता है।

जो पीकर ज़हर अमर होना चाहें, आएँ,
जो वेहोशी चाहें वे मुझसे दूर रहें,
जो जूझ सकें मझधारों में वे साथ चलें,
जो कूल-कूल चाहें वे अपनी राह वहें।

मेरे गीत

हारे जीवन की शक्ति गीत हैं मेरे।

हर शब्द एक आँसू युग के लोचन का,
हर भाव एक उच्छ्वास प्रज्वलित मन का,
प्राणों की सीपी में ढलकर निकले हैं,
युग-पीड़ा की अभिव्यक्ति गीत हैं मेरे।
हारे जीवन की शक्ति गीत हैं मेरे।

जग की आकृति के ये निर्मल दर्पण हैं,
अंगों को सावे हैं, माना लघु कण हैं,
इनकी लघुता पर मैं महिमा को वारूँ,
कण पर असीम आसक्ति गीत हैं मेरे।
हारे जीवन की शक्ति गीत हैं मेरे।

इनमें सावन की मंजुल हरियाली है,
शशि की शीतलता, ऊषा की लाली है,
इनमें वह सब है जो वरेण्य संसृति का,
मन की निश्छल अनुरक्ति गीत हैं मेरे।
हारे जीवन की शक्ति गीत हैं मेरे।

ढाली है इतनी इन गीतों में ज्वाला,
हर गीत अमरता के आसव का प्याला,
जीवन के तप के ये प्रतीक हैं पावन,
वंधन से चरम-विरक्ति गीत हैं मेरे।
हारे जीवन की शक्ति गीत हैं मेरे।

क्या नहीं है ?

पूछते हो तुम कि मेरे पास क्या है ?
क्या नहीं है ?

वादलों का दर्द, विजली की तड़प, आँसू घटा के,
रात की स्याही, सितारों की जलन, सिसकी पवन की।
आह फूलों की कि जिनका तन विंधा है कण्टकों से,
उस पपीहे की व्यथा, करुणा जहाँ सारे भुवन की।
वेदना से कीमती हीरे नहीं, मोती नहीं हैं।
पूछते हो तुम कि मेरे पास क्या है ?
क्या नहीं है ?

कौन हैं वे पुतलियाँ जिनको नहीं पानी मिला है,
प्राण है कोई यहाँ जो पीर का पाला नहीं हो ?
साँस है कोई कि जो उच्छ्वास की दासी नहीं हो,
पैर है कोई कि जिसके वक्ष पर छाला नहीं हो ?
आँख वह देखी नहीं जो फूटकर रोती नहीं है।
पूछते हो तुम कि मेरे पास क्या है ?
क्या नहीं है ?

विश्व-भर का दर्द, आँसू, सिसकियाँ, उच्छ्वास, छाले,
जिस जगह आकर मिले हैं सब, वहाँ कवि का हृदय है।

एक सीमित बिन्दु से लेकर, असीमित सागरों तक,
जिस जगह खेले-खुले हैं सब, वहाँ कवि का हृदय है।
दीन है वह मन जहाँ समवेदना होती नहीं है।
पूछते हो तुम कि मेरे पास क्या है ?
क्या नहीं है ?

समझौता नहीं किया

नदी डूब जाएगी, इसकी कभी मुझे परवाह नहीं थी,
मैंने किसी नामवाले तट से समझौता नहीं किया।

कितनी बार नाव को तुमने धारा के हाथों बेचा है,
कितनी बार बिना पूछे कर दी भँवरों के साथ सगाई।
कितनी बार पगों को तुमने लहरों की बेड़ी पहनाई,
पर कुछ ऐसा हुआ नाव हर बार कूल से जा टकराई।
मुझसा देखा नहीं मिलेगा तुम्हें कि जिसने संघर्षों का—
विष पी लिया, कभी मधु के घट से समझौता नहीं किया।
नदी डूब जाएगी, इसकी कभी मुझे परवाह नहीं थी,
मैंने किसी नामवाले तट से समझौता नहीं किया।

तृप्ति छीनकर डाली तुमने प्राणों पर निस्सीम पिपासा,
जाने क्या हो गया कि मुझको वही प्यास वरदान हो गई।
जितनी मंजिल मुझे दी तुमने, पूनम बनकर किसी डगर ने,
जितने काँटे दिए कि उतनी और राह आसान हो गई।
सिर पर धूप चढ़ी दुपहर की, जीवन-भर पग-तल अंगारे,
मेरी सहनशीलता ने वट से समझौता नहीं किया।
नदी डूब जाएगी, इसकी कभी मुझे परवाह नहीं थी,
मैंने किसी नामवाले तट से समझौता नहीं किया।

अब तो कुछ इतना आदी हूँ, दर्द नहीं तो जीना क्या है!
जितने अश्रु तुम्हारे घर हों, दे जाओ, मैं फूल बनाऊँ।
जितनी पीड़ा पास तुम्हारे, मुझसे बदलो मुसकानों में,
ज़हर मुझे मिल जाए जितना, जीवन के अनुकूल बनाऊँ।
जीते-मरते, मरते-जीते, खेल हुआ मरना-जीना,
मेरी तरुणाई ने मरघट से समझौता नहीं किया।
तरी डूब जाएगी, इसकी कभी मुझे परवाह नहीं थी,
मैंने किसी मानवाले तट से समझौता नहीं किया।

गोताखोर

मैं गोताखोर, मुझे गहरे जाना होगा,
तुम तट पर बैठ भँवर की बातें किया करो।

मैं पहला खोजा नहीं अगम भव-सागर का,
मुझसे पहले इसको कितनों ने थाहा है,
तल के मोती खोजे, परखे, बिखराए हैं,
डूबे हैं पर मिट्टी का कौल निबाहा है,
मैं भी खोजा हूँ, मुझमें-उनमें भेद यही,
मैं सबसे महँगे उस मोती का आशिक हूँ—
जो मिला नहीं, वह पा लेने की धुन मेरी,
तुम मिला सहेजो, घर की बातें किया करो।
मैं गोताखोर, मुझे गहरे जाना होगा,
तुम तट पर बैठ भँवर की बातें किया करो।

पथ पर तो सब चलते हैं, चलना पड़ता है,
पर मेरे चरण नया पथ चलना सीखे हैं,
तुम हँसो मगर मेरा विश्वास न हारेगा,
जीने के अपने-अपने अलग तरीके हैं,
जिस पथ पर कोई पैर निशानी छोड़ गया,
उस पथ पर चलना, मेरे मन को रुचा नहीं
काँटे रौंदूंगा, अपनी राह बनाऊँगा,

तुम फूलों-भरी डगर की बातें किया करो।
कोई बोझा अपने सिर पर मत लिया करो।
मैं गोताखोर, मुझे गहरे जाना होगा,
तुम तट पर बैठ भँवर की बातें किया करो।

नयनों के तीखे तीर कुंतलों की छाया,
मन बाँध रही यह जो रंगों की डोरी है,
इन गीली गलियों में भरमाया कौन नहीं,
यह भूल आदमी की सचमुच कमजोरी है,
लेकिन अपने पर विजय नहीं जिसने पाई,
मैं उसको कायर कहता हूँ, पशु कहता हूँ,
मैं इसीलिए बस वीरानों में रहता हूँ,
तुम जादू-भरे नगर की बातें किया करो।
जब-जब हो ज़रा उतार, और पी लिया करो।
मैं गोताखोर, मुझे गहरे जाना होगा,
तुम तट पर बैठ भँवर की बातें किया करो।

पथ पर चलते उस रोज़ बहार मिली मुझसे,
बोली, "गायक! मैं तुमसे ब्याह रचाऊँगी,
ऐसा मनमौजी मिला नहीं दूसरा मुझे,
जग-भर के फूल तुम्हारे घर ले आऊँगी",
मैं बोला, "मेरा प्यार, सदा तुम सुखी रहो,
मेरे मन को कोई बंधन स्वीकार नहीं",
तब से, बहार से मेरा नाता टूट गया,
फूलों को अपनी झोली में रख लिया करो।
मुझसे केवल पतझर की बातें किया करो।
मैं गोताखोर, मुझे गहरे जाना होगा,
तुम तट पर बैठ भँवर की बातें किया करो।

गीत बागी हो गए हैं

सिंधु से कह दो कि मंथन के लिए तैयार हो ले,
आज मेरे गीत बागी हो गए हैं।

इस तरह कब तक सहेजेगा तली में,
कोष अमृत का जगत् पाकर रहेगा,
यह धरोहर जोकि तू बैठा दबाए,
एक दीवाना इसे लाकर रहेगा,
ये भँवर, लाटें, लहरियाँ, व्यर्थ हैं सब,
आज मैं सिर पर कफन बाँधे चला हूँ,
कूल से कह दो कि वंदन के लिए तैयार हो ले,
आज मेरे गीत बागी हो गए हैं।
सिंधु से कह दो कि मंथन के लिए तैयार हो ले,
आज मेरे गीत बागी हो गए हैं।

वे निराशा की घटाएँ छट चुकी हैं,
मैं नया विश्वास लेकर आ रहा हूँ,
फूल-कलियों पर जवानी आ गई है,
गीत जीवन की विजय के गा रहा हूँ,
स्वर्ग से अब यह धरित्री होड़ लेगी,
इन दिशाओं से कहो, भेरी बजाएँ,

और चिता किसे थी, मुझाता मुझे,
मैं चुनूँ कौन-सी एक ओझल दिशा,
हाँ, कुतूहल-भरा प्राण बोला स्वयं,
रात के बाद क्या है, इसे जान ले,
बँध गई धुन, चरण खोज लेने किरण,
चल पड़े प्रात का सिर्फ अनुमान ले,
प्रात आया ढला, राई आई गई,
पाँव चलते रहे, जग बदलता रहा,
अंत है रात लेकिन, दिखाता रहा,
टूटकर व्योम का हर सितारा मुझे।
खा चुका ज़िदगी के थपेड़े बहुत,
धार ही बन गई अब किनारा मुझे।

और अब जान पाया कि इस विश्व में,
धार है सत्य, माया सजे कूल हैं,
क्या अजब बात है वाह री ज़िदगी!
फूल भी शूल हैं, शूल भी शूल हैं,
सुख नहीं है अनश्वर यहाँ, पीर है,
इसलिए पीर से अब मुझे प्यार है,
मुख उन्हें जोकि जीना नहीं जानते,
जानते जो, गरल की उन्हें धार है,
धारणा बन गई है हृदय की अटल,
ज़िदगी दूसरा नाम संघर्ष का,
आपदाएँ नहीं भय रहीं अब तनिक,
फूल-सा राह का हर अँगारा मुझे।
खा चुका ज़िदगी के थपेड़े बहुत,
धार ही बन गई अब किनारा मुझे।

सागर का विस्तार चाहिए

मेरी भावुकता को सीमाओं बाँध नहीं पाओगे,
पोखर का तैराक नहीं मैं, सागर का विस्तार चाहिए।

तुम तम की मेहमानी करते तम के आदी बन बैठे हो,
जीवन की अविजेय चेतना के प्रतिवादी बन बैठे हो।
धुंध झेलते आँखें किरणों से कतराना सीख गई हैं,
अंधकार के हाथ बिके, अपनी बरबादी बन बैठे हो।
मिली मुझे भी अमा, मगर मैंने सूरज के सपने देखे,
तुम्हें मुबारक रात तुम्हारी, मुझे ज्योति का ज्वार चाहिए।
मेरी भावुकता को सीमाओं में बाँध नहीं पाओगे,
पोखर का तैराक नहीं मैं, सागर का विस्तार चाहिए।

तुम पतझर के दास, कभी जागे तो अपना फूल खिलाया,
कभी रोशनी मिली अगर तो अपने घर में दीप जलाया।
चाहा तो चाहा कि घटाएँ सिर्फ तुम्हारे द्वारे बरसें,
एक तुम्हारा आँगन-आँगन, तुमने सावन को समझाया।
मैंने जीवन-भर मुसकाकर कोई रोती आँख न देखी,
कैसे खिलूँ, मुझे तो सारी बगिया का श्रृंगार चाहिए।
मेरी भावुकता को सीमाओं में बाँध नहीं पाओगे,
पोखर का तैराक नहीं मैं, सागर का विस्तार चाहिए।

वह तिनका मैं नहीं, कि आँधी सिर पर बैठे, नाचे-गाए,
मेरे साहस की दृढ़ता पर विपदाओं ने शीष झुकाए।
मैं अपना पथ चला, कि मेरी अपनी जीवन की परिभाषा,
चुगे अगर तो मोती हंसा, चाहे लंघन कर मर जाए।
तुम जो परिधि खींचकर बैठे, अपनी गली सींचकर बैठे,
मैं क्या करूँ कि मेरी साधों को असीम संसार चाहिए।
मेरी भावुकता को सीमाओं में बाँध नहीं पाओगे,
पोखर का तैराक नहीं मैं, सागर का विस्तार चाहिए।

ओ महत्तम ! लो, कि मेरी क्षुद्रता भी आज़माओ,
मैं न मरकर भी मिटा हूँ, काल के अभिमान आओ,
घन थके चाहे, न मेरा वक्ष लेकिन अब थकेगा,
आज हर आघात यह स्वीकार करना चाहता है।
आज उर अंगार से शृंगार करना चाहता है।

गाते जाओ

तुम चहको तभी सवेरा है,
मन के पंछी ! गाते जाओ।

माना, अनजान बिजलियों ने,
हर बार नीड़ बिखराया है,
आँधी ने तृण छितराए हैं,
अँधियारों ने धमकाया है,
लेकिन हर बार धीर, तुमने
तिनके चुन उसे सजाया है,
जर्जर पंखों से भी तेरा—
निश्चय नभ छूकर आया है,
यह बात नई तो नहीं, आज
तूफान गरजते आते हैं,
थकना जीवित मर जाना है,
मन के पंछी ! गाते जाओ।
तुम चहको तभी सवेरा है,
मन के पंछी ! गाते जाओ।

मंजिल मत पूछो, कूल कहाँ !
जीवन तो अविरत चलना है,

गिरना है, गिरकर उठना है,
उठना है और सँभलना है,
आँधी हो या अँधियारा हो,
जलना है हरदम जलना है,
शूलों में रग-रग बिंधी रहे,
फिर भी हँस-हँसकर खिलना है,
जय का न प्रलोभन रिझा सके,
भय हो न पराजय का मन को,
तानो ये डैने और ज़रा,
मन के पंछी! गाते जाओ।

तुम चहको तभी सवेरा है,
मन के पंछी! गाते जाओ।

साधक से

तुमने ही वरदान चुन लिया,
युग का शाप कौन झेलेगा ?

ढाल रहे यह जो प्यालों में
फेन उगलती मादक हाला,
गलबाँहें वरमाला जैसी,
फिरकी-सी चंचल मधुबाला,
रूप प्यार के झरते निर्झर,
मदहोशी में डूबे - डूबे,
तुमने ही मधुपान चुन लिया,
विष का ताप कौन झेलेगा ?
युग का शाप कौन झेलेगा ?

देखो तो कितनी उजड़ी है
जीवन की फूली फुलवारी,
डाल - डाल सूखी, मुरझाई,
मरुथल-सी यह क्यारी-क्यारी,
फूल-फूल कितना घायल है,
ओ जीवन - मधुवन के माली !

तुमने कुल-संधान चुन लिया,
यह परिताप कौन झेलेगा ?
युग का शाप कौन झेलेगा ?

आओ इन रीते प्राणों में
फिर साधों के फूल खिलाएँ,
आओ इन सूनी आँखों में
फिर सपनों के साज सजाएँ,
जिस नभ का सूरज संन्यासी
उसकी रात ढलेगी कैसे ?
तुम तोड़ोगे जग की तन्द्रा,
अपने आप कौन झेलेगा ?
युग का शाप कौन झेलेगा ?

गीत

जिसने भी माँगा जीवन से वरदान बहारों का माँगा,
मेरी दीवानी साधों ने जी भर पतझर से प्यार किया।

जो भी रीझा, अब तक रीझा मधु पर मदिरा की लाली पर,
रीझा भौंरों के गुंजन पर, रीझा पराग की प्याली पर,
जिसने भी माँगा, सावन से वरदान फुहारों का माँगा,
मेरे गीतों ने विद्युत की अंगार-लहर से प्यार किया।
मेरी दीवानी साधों ने जी भर पतझर से प्यार किया।

जिसने चाही, अब तक चाही नभचुंबी महलों की छाया,
हीरा-मोती, चाँदी-सोना, वैभव की क्षणभंगुर माया,
जिसने भी माँगा निर्जन से वरदान सितारों का माँगा,
मेरी मानी अभिलाषा ने अपने खँडहर से प्यार किया।
मेरी दीवानी साधों ने जी भर पतझर से प्यार किया।

दो क्षण का सुख मेरा असीम दाहक प्रदाह बहला न सका,
मृग की प्रवंचना के स्वर में मेरा पीड़ित मन गा न सका,
चलनेवालों ने मधुवन से वरदान सहारों का माँगा,
मेरे पंथी ने जीवन-भर कंटकित डगर से प्यार किया।
मेरी दीवानी साधों ने अब तक पतझर से प्यार किया।

सबने जीवन के सागर में नैया चाही, संबल चाहे,
धारा में घुटने टेक दिए, पतवारों के आँचल चाहे,
जिसने भी माँगा उलझन से वरदान किनारों का माँगा,
मेरी तैराक भुजाओं ने बस एक भँवर से प्यार किया।
मेरी दीवानी साधों ने जी भर पतझर से प्यार किया।

गीत

दीप हूँ जिसने अँधेरे से न अब तक हार मानी।

यह नहीं है बात, बाती पर तिमिर टूटा नहीं हो,
यह नहीं है बात, काली रात ने लूटा नहीं हो,
यह नहीं है, दूर प्राणों से रहे पीणा-प्रभंजन,
मौत पर लेकिन सदा हँसती रही मेरी जवानी।
दीप हूँ जिसने अँधेरे से न अब तक हार मानी।

आँख खोली तब रुदन था, आज भी सम्मुख रुदन है,
था विकल तब भी हृदय, तो आज भी बेचैन मन है,
और जब तक हूँ, सदा ऐसे हृदय जलता रहेगा,
जानकर यह भेद पलकों तक नहीं आई रवानी।
दीप हूँ जिसने अँधेरे से न अब तक हार मानी।

हार सौ-सौ बार मन का धीर तो है डगमगाया,
तीर तक सौ बार जाकर हौसला है लौट आया,
प्राण की यह साध ही बस, बुझ न पाई है अभी तक,
राह से लड़ते हुए हो खत्म साँसों की कहानी।
दीप हूँ जिसने अँधेरे से न अब तक हार मानी।

सबने जीवन के सागर में नैया चाही, संबल चाहे,
धारा में घुटने टेक दिए, पतवारों के आँचल चाहे,
जिसने भी माँगा उलझन से वरदान किनारों का माँगा,
मेरी तैराक भुजाओं ने बस एक भँवर से प्यार किया।
मेरी दीवानी साधों ने जी भर पतझर से प्यार किया।

खोखली नींव

तुम ऊँची-ऊँची दीवारें लगे उठाने,
कंगूरे, मेंढ़ें, मीनारें लगे सजाने,
और नींव खोखली रह गई।
धसकेगा,
पोला भराव है,
यह कैसा घर बना रहे हो,
ऊपर से भारी दबाव है,
ढह जाएगा,
व्यर्थ साधना,
श्रम का अपव्यय,
पहले नींव भरो दृढ़
फिर दीवार उठाओ,
कंगूरे-मीनारें-वन्दनवार सजाओ,
यह तो झेल न पाएगा पहला पानी भी;
क्योंकि नींव खोखली रह गई।

गीत

फूलों की बगिया कहो, कहो केसर-क्यारी,
इसलिए कि तुमको जीवन सरल मिला है।

तुमने मुझ-सा अवसाद नहीं पाया है,
ऐसा मधुवन बरबाद नहीं पाया है,
झुलसे-झुलसे ये फूल, सिसकती कलियाँ,
करुणा के जल से गीली-गीली गलियाँ,
सावन आया लेकिन बिन बरसे लौटा,
मेरा मनभाया उजड़े घर से लौटा,
प्राणों को पावक मिला, नयन को पानी,
मेरा जीवन शूलों की सेज पला है।
फूलों की बगिया कहो, कहो केसर-क्यारी,
इसलिए कि तुमको जीवन सरल मिला है।

तुम जले और बहती आई पुरवाई,
चाँदनी रही झिलमिल अम्बर में छाई,
आँधी में जली न जिस दीपक की बाती,
वह क्या जाने छलनी होती है छाती,
मैं जला और झंझावातों ने घेरा,
घनघोर तिमिरवाली रातों ने घेरा,

टिमटिमा रहा हूँ! क्या कम है जलता हूँ,
ऐसे भी जग में कोई दीप जला है?
फूलों की बगिया कहो, कहो केसर-क्यारी,
इसलिए कि तुमको जीवन सरल मिला है।

माना, कुछ और प्राण हैं पीड़ावाले,
लेकिन ममता धोती है उनके छाले,
शीतलता पहले मिली, मिली फिर ज्वाला,
मैंने तो केवल एक पीर को पाला,
बिजलियाँ मिलीं, कोई जलधार न लाया,
तट मिला तुम्हें, पर, मैं भँवरों को भाया,
छाया में तो संघर्ष मधुर होता है,
मेरा राही आँचल के बिना चला है।
फूलों की बगिया कहो, कहो केसर-क्यारी,
इसलिए कि तुमको जीवन सरल मिला है।

तुम-सा इन प्राणों का अंगार नहीं है,
माधवी निशा मेरा संसार नहीं है,
तपती सिकता-सा अंतर इतना प्यासा,
रह गई तृप्ति की भी न शेष अभिलाषा,
लगता है जैसे जनम-जनम तपना है,
रस के मेघों को झरन मुझे सपना है,
अब तो बस इतनी साध, न कह दे दुनिया,
यह सूरज शीष झुकाए हुए ढला है।
फूलों की बगिया कहो, कहो केसर-क्यारी,
इसलिए कि तुमको जीवन सरल मिला है।

वर्षगाँठ के दिन

आज एक वर्ष और बीत गया,
जीवन का रिसता घट और तनिक रीत गया।
आज एक वर्ष और बीत गया।

ये जो चौबीस वर्ष जीवन के बीत गए,
बचपन की कली हँसी, यौवन का फूल खिला,
रूप, रस, गंध के झकोरों में डाल हिली,
अनुभव की रसना को जीने का स्वाद मिला,
लेकिन दो पल पीछे हर कल जो आया था,
प्राणों के पास रोज़ नई पीर लाया था,
रूप, रस, गंध छले, दाहों के दीप जले,
फूल मुरझाता रहा, काँटों पर चरण चले,
यह थी संग्रामभूमि, घातों की भीड़ लगी,
कभी ज्योति जीत गई, कभी तिमिर जीत गया।
आज एक वर्ष और बीत गया।

अब मुझ या स्वप्न बना, जीवन की राहों में,
ग्रीष्म धूप दुपहर की, पग-पग अंगारे थे,
नागिन-सी स्याह-स्याह रात घिरी मावस की,
चाँदनी पराई बनी, डूबे सब तारे थे,

अब मेरी दुनिया से ओझल उजियाला था,
प्राणों को रोज़ नई पीड़ा ने पाला था,
जीवन की नैया को मिली तेज़ धारा थी,
शबनम की बूंद बनी मुझ तक अँगारा थी,
रूठी-रूठी बहार, पतझर के हाथों से—
साधों का पात-पात असमय हो पीत गया।
आज एक वर्ष और बीत गया।

अब जो भी दर्द मिला, बहलाना सीख लिया,
प्राणों की ज्वाला को गीतों में ढाल दिया,
आँसू जो छलक पड़े, शब्दों में गूँथ लिए,
सागर जो सोया था, ऊपर उछाल दिया,
दुनिया को गीत मिले, मन को मनमीत मिले,
जीवन के द्वार नई आशा के दीप जले,
पीड़ा का कालकूट मैं पीना सीख गया,
गीतों की छाँह तले अब जीना सीख गया,
वाणी की शक्ति मिली, अब मुझको दरवाज़े
जो भी तूफान मिला, मुझसे भयभीत गया।
आज एक वर्ष और बीत गया।

आँखों में आँसू हैं, प्राणों में ज्वाला है,
छाती पर बोझ लिए मैं पथ पर चलता हूँ,
अधरों को सी ले जो, जग का तम पी ले जो,
बुझने को जलूं किंतु सूरज-सा जलता हूँ,
ऐसा है फूल कौन, झरने को खिले नहीं,
ऐसा है दीप कहाँ, बुझने को जले नहीं,
उलझन से जीवन का यह रहस्य जाना है,
संसृति का एक सत्य मैंने पहचाना है,

जन्म जहाँ, मृत्यु वहाँ, मृत्यु जहाँ, जन्म वहाँ,
वर्तमान होगा कल, ढल जो अतीत गया।
आज एक वर्ष और बीत गया।

आगत की चिंता का बोझ हुआ हलका है,
अब आँसू आँखों के हीरे हैं, मोती हैं,
मन की हर साध मुझे सिन्दूरी लगती है,
सत्य जन्मता है, वेदना जो बीज बोती है,
जग की व्यथा से हुआ, आज बहुत प्यार मुझे,
अपना-सा लगता है, सारा संसार मुझे,
फैल बनी सागर-सी अब मन की गागर है,
मेरी यह धरती है, मेरा यह अंबर है,
सूनापन डूब गया, मैंने जग जीत लिया,
मन को समवेदन-सा मिल मनमीत गया।
आज एक वर्ष और बीत गया।

बहार बाकी

उदास धरती, उदास अम्बर, उदास राही, उदास राहें,
अभी सुमन का सिंगार सूना, अभी चमन की बहार बाकी।

बड़ी तपन है, बड़ी जलन है, अधीर आहें, बुझी निगाहें,
थके-थके तन, लुटा-लुटा मन, अभी अमावस ढली नहीं है,
अभी हवा में नमी न आई, अभी दर्द में कमी न आई,
अभी सवेरा सँवर न पाया, अभी रोशनी खिली नहीं है,
अभी न माटी उजल सकी है, अभी न दुनिया बदल सकी है,
अभी मुँदे हैं पलक तुम्हारे, अभी नींद का खुमार बाकी।
अभी सुमन का सिंगार सूना, अभी चमन की बहार बाकी।

वही सिलसिला हृदय-हृदय का, बँधे हुए हैं, खुले नहीं हैं,
वही घुटन है, वही अँधेरा, अभी घृणा की पटी न खाई,
वही विषमता के हाथ काले कि इनकी स्याही धुली नहीं है,
अभी दिशाओं की माँग सूनी, अभी सिंदूरी सुबह न आई,
अभी पहाड़ों का बोझ सिर पर, कसम तुम्हारी न टूट जाए,
अभी सृजन का सितार गुमसुम, अभी प्यार की पुकार बाकी।
अभी सुमन का सिंगार सूना, अभी चमन की बहार बाकी।

अभी कली मुस्करा न पाई, अभी भ्रमर गुनगुना न पाए,
अभी पलक डबडबा रहे हैं, अभी न आँसू बहल सके हैं,

हवा में पाँखें न तोल पाए, अभी पखेरू डरे हुए हैं,
अभी आँधियाँ बहक रही हैं, अभी न काँटे कुचल सके हैं,
अभी उमंगों के सर्द पाँवों की बेड़ियाँ काटनी पड़ेंगी,
अभी न लोहू तपा तुम्हारा, अभी प्रलय पर प्रहार बाकी।
अभी सुमन का सिंगार सूना, अभी चमन की बहार बाकी।

महात्मा गांधी : एक श्रद्धांजलि

विश्व के सबसे बड़े वरदान, मेरी वन्दना लो।

क्या तिमिर था, पंथ पर चलना नरक दूभर हुआ था,
जगमगाना क्या, सिसक जलना नरक दूभर हुआ था,
और तब तुमने अभय-आशीष दुनिया को दिया था,
आपदाओं का कलेजा भी जिसे देखा, हिला था,

लक्ष्य के सुलझे हुए संधान ! मेरी वन्दना लो।
विश्व के सबसे बड़े वरदान ! मेरी वन्दना लो।

मौन गुंजन थे चमन के फूल मुरझाए हुए थे,
क्यारियाँ उजड़ीं भयानक दंभ लहराए हुए थे,
मौन कोयल की गिरी थी, 'पी कहाँ' के गान बन्दी,
पर, जहाँ तुम, रह न सकते थे, वहाँ अरमान बन्दी,

भूमि पर थे स्वर्ग का सामान, मेरी वन्दना लो।
विश्व के सबसे बड़े वरदान ! मेरी वन्दना लो।

पी गए विष-कोष, तुमने पा लिया मधु-दान दानी!
प्राण देकर दे गए तुम जड़-जगत् को प्राण दानी!
काल तुमको खा गया! या काल को तुम खा गए हो,
मृत्यु चिरजीवन जहाँ, उस बिन्दु तक तुम आ गए हो,

वन्दना लो, मुक्ति के सोपान! मेरी वन्दना लो।
विश्व के सबसे बड़े वरदान! मेरी वन्दना लो।

गांधी के प्रति

जब-जब तिमिर तरुण होता है,
उजियाला उदास रोता है,
तब-तब इस धरती पर कोई,
ऐसा एक दीप जलता है,
जो उजियाले को निखार दे,
दीप-दीप, घर-घर उजार दे।

जब-जब पतझर के दिन आते,
किसलय-कली-कुसुम कुम्हलाते,
तब-तब इस धरती पर कोई,
ऐसा एक सुमन खिलता है,
जो सारी बगिया सँवार दे,
पतझर का पानी उतार दे।

जब-जब पंथ हुआ पथरीला,
शूल-शूल हो गया हठीला,
तब-तब इस धरती पर कोई
ऐसा एक चरण चलता है,

जोकि पंक पथ का बुहार दे,
प्राणों को जय की पुकार दे।

ऐसा एक दीप था गांधी,
ऐसा एक सुमन था गांधी,
ऐसा एक चरण था गांधी।

राष्ट्र-पर्व

कल इन्हीं दिशाओं में कैसी खामोशी थी,
कल इन्हीं हवाओं में कैसी खामोशी थी,
परिवर्तन की पुस्तक के पृष्ठ पलटते हैं,
इन नगरों-गाँवों में कैसी खामोशी थी।

उजड़े-उजड़े खलिहान, गीत सहमे-सहमे,
सरसों उदास, धानों की वृद्ध जवानी थी,
मुरझाए फूल, थके गुंजन, उन्मन वसंत,
कल तक रेगिस्तानों की धरा कहानी थी।

अँधियारे की डरावनी घातें बीत चुकीं,
बेबस दृग की बेबस बरसातें बीत चुकीं,
युग के दीपक की लौ जवान हो गई, सुनो,
कल की वे काली-काली रातें बीत चुकीं।

जग की आँखों में आँसू : डूबे तारे हैं,
मुसकानों के रथ पहुँचे द्वारे-द्वारे हैं,
सूरज, जैसे भारत का भाग्य दमकता है,
शबनम, नभ ने माटी के चरण पखारे हैं;

मरुथल की सिकता सोनी जैसी चमक रही,
सौरभ से गली-गली वसुधा की गमक रही,
तप चुके प्राण तप के आतप में बहुत देर,
धरती की काया कुन्दन बनकर दमक रही।

बादल गुलाल के पवन-दोल पर झूल रहे,
किरणों की परियों के दल कैसे ऊल रहे,
थक जाए दृष्टि, छोर लेकिन मिल सके नहीं,
आभा के फूल जमाने-भर में फूल रहे।

गिरिराज हिमालय का ललाट जगमगा रहा,
झरना-झरना उद्गीथ मधुर गुनगुना रहा,
आवेग मोद का मानो नदियाँ फूट रहीं,
अंकुर-अंकुर पुलका-पुलका सिर हिला रहा।

कोयल - पपीहरे मंगल गीत सुनाते हैं,
भौंरों के मधु गुंजार नहीं थक पाते हैं,
बावली बुलबुलें शाख-शाख से खेल रहीं,
कौंपलें मचलतीं, पात-पात अँगड़ाते हैं।

गंगा मतवाली होकर दौड़ी जाती है,
यमुना लहरों के स्वर में गीत सुनाती है,
छाया तमाल तरुवर की, अधर धरे वंशी,
घनश्याम बजाते, तन्मय राधा गाती है।

अम्बर के देव चकित-चौंके दिखलाते हैं,
झोली में भर-भरकर रोली बिखराते हैं,

धरती पर जैसे स्वर्ग उतरता आता है,
पंछी पर खोल प्रभाती गाते आते हैं।

किसने तिनके से पथ का श्रंग हटाया है?
चन्दा के मुख से किसने दाग मिटाया है?
छाती में सहज सहेज पीर दुनिया-भर की
किसने सुहाग का सुख-सिन्दूर लुटाया है?

भारत, जो दुनिया-भर में गौरवशाली है,
भारत, जो जग के मधुवन की हरियाली है,
भारत, निसर्ग के स्वर्ण-ताज का कोहनूर,
भारत, जो जीवन-अम्बर की उजियाली है।

गीता का चिरवरदान दिया जिसने जग को,
'तम से प्रकाश' उत्थान दिया जिसने जग को,
'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पावनतम महामंत्र,
जीवन का दर्शन दान दिया जिसने जग को।

मस्तक को गौरव औ' मन को अभिमान दिया,
मंज़िल से आगे जाने का सामान दिया,
आँखों से चरण धुलाए जो निर्धनता के
नभ से कुटिया में सौंप तुम्हें भगवान दिया।

उस भारत की जय का यह पावन उत्सव है,
जिसने कि असंभव कर दिखलाया संभव है,
तलवारें लज्जित, अत्याचार चरण छूते,
गूंजता चतुर्दिक सत्य-अहिंसा का रव है।

धरती का बेटा पावन पर्व मनाता है,
तरुवर-तरुवर हर्षित तालियाँ बजाता है,
स्वागत के गान गगन में नहीं समा पाते,
तोपों का स्वर नभ की छाती दहलाता है।

यह कली-कली, प्राणों की साध फली-फूली,
पतझर का दर्प चढ़ा परिवर्तन की शूली,
स्वर को सरगम, वाणी को नवउल्लास मिला,
नूतन पट पर नवचित्र आँकती है तूली।

इतिहासों के पृष्ठों की भाषा बदल गई,
चरणों की गति की वह परिभाषा बदल गई,
हो रहा नीड़ से देखो बिजली का विवाद,
पीड़ा उदास, आँधी की आशा बदल गई।

मेरे भारत ! स्वीकार करो, वंदन कवि का,
प्रतिरूप तुम्हीं हो अँधियारे जग में रवि का,
पथ-दर्शक संसृति-गति के, तुम अनुपम, अजेय,
बन सका न मुझसे पूर्ण चित्र पावन छवि का।

ज्योति-पर्व

धरती और गगन के दीपों का आलोक-समन्वय,
सौ-सौ हाथ उठा आभा के, बोला जीवन की जय।

दीप-दीप की प्राण-ज्योति ने अक्षम तम ललकारा,
फहरा केतु प्रखर ज्वाला का, कुटिल अँधेरा हारा,
अभिषेकित नर-प्रतिमा, मंदिर बनी जगत की कारा,
ज्योति न हारी कभी, न हारेगी, अब यह निस्संशय।
धरती और गगन के दीपों का आलोक-समन्वय,
सौ-सौ हाथ उठा आभा के, बोला जीवन की जय।

गई अमावस, झूम रहीं झिलमिल दीपों की पाँतें,
कहीं कन्दराओं में गुमसुम वे तम की बारातें,
लपट-लपट की धूम, चिनगियों की तन रहीं कनातें,
दमक रही कुन्दन-सी धरती, जगमग अम्बर-आलय।
धरती और गगन के दीपों का आलोक-समन्वय,
सौ-सौ हाथ उठा आभा के, बोला जीवन की जय।

अब न रहे प्रच्छन्न तुम्हारे तन में भी अँधियारा,
प्राण-प्रदीपो ! बुझकर भी तुम पी लोगे तम सारा,

आज शपथ लो, नहीं झुकेगा गौरव-मान तुम्हारा,
विचरे यह आलोक सर्वदा, टले नहीं यह निश्चय।
धरती और गगन के दीपों का आलोक-समन्वय,
सौ-सौ हाथ उठा आभा के, बोला जीवन की जय।

शुभ कामना

छब्बीस जनवरी ! क्या हो वन्दन तेरा,
तेरी पूजा में कौन गीत मैं गाऊँ?
हर प्राण तुम्हारे गौरव में डूबा है,
यह गाथा मैं किन छन्दों में दुहराऊँ?

यह जो हरीतिमा ओढ़े धरती फैली,
यह जो सतरंगी अम्बर झूम रहा है,
यह जो कारा को तोड़ निकल आया है,
आजाद पवन खेतों में घूम रहा है।

यह जो फूलों ने आँख खोलकर देखा,
यह जो भौंरों की भीड़ चली आती है,
यह निर्झरिणी जलतरंग-सी बहती,
ये जो नदियाँ कल-कल ध्वनि में गाती हैं।

यह जो गुलाल बरसाती आती ऊषा,
यह जो किरणों के दल नचले आते हैं,
पैंगें भर-भरकर करते हुए किलोलें,
जिसकी बिरुदावलि ये पंछी गाते हैं?

यह सब तेरे स्वागत का साज सजा है,
छब्बीस जनवरी, कौन गीत मैं गाऊँ?
संसार तुम्हारी छाया में चेतन है,
यह गाथा मैं किन छन्दों में दुहराऊँ?

यह दिन क्या कभी भुला पाएगा भारत!
यह दिन, जब पहला सूरज मुसकाया था,
यह दिन कि हिमालय ने सिर उठा लिया था,
इतिहास नये साँचे में ढल आया था।

'रावी' के तट पर एक ज्योति जागी थी
जिसने तम के तन में दरार डाली थी,
उस दिन ज्वाला बरसाती देखी जग ने,
हर आँख कि जो पहले आँसूवाली थी।

दर्दीले गीत भैरवी बनकर जागे,
साँसों की तूफानों से हुई सगाई,
आज़ाद जिएँगे हम आज़ाद मिटेंगे,
सौ-सौ कंठों ने उठ आवाज़ लगाई।

गोलियाँ खुले सीनों पर हँसकर झेलीं,
फाँसी की डोरी हमें बनी वरमाला,
छब्बीस जनवरी! तेरी छाया में हम
लाए तम के हाथों से छीन उजाला।

तब से प्रभात को छू न सका है कोई,
हम प्रगति-पंथ पर बढ़े चले आते हैं,
संहार झुकाए शीष खड़े हैं आगे,
अत्याचारों पर चढ़े चले आते हैं।

श्रम के हाथों से हम युग के खँडहर पर
अपना घर नये सिरे से बना रहे हैं,
यह मंदिर अब वीरान न हो पाएगा,
दुनिया को खुली चुनौती सुना रहे हैं।

अस्सी करोड़ हाथों ने आगे बढ़कर,
तेरे पथ के काँटों को बीन लिया है,
छब्बीस जनवरी! मेघों के घर बन्दी,
हमने तेरा जीवन - रस छीन लिया है।

फहराएगी यह विजय - ध्वजा ऐसे ही,
छब्बीस जनवरी! जय हो, तेरी जय हो,
कामना हमारी तू फूलों से खेले,
तेरे आँगन की सुख - समृद्धि अक्षय हो।

वीणा और तलवार

ज़रा तोलो तराज़ू पर कि किसकी तोल भारी है,
तुम्हें तलवार प्यारी है, हमें झंकार प्यारी है।

भरो तुम हर बगीचा आँसुओं-चीखों-कराहों से,
मगर हम हर बगीचा फूल-शबनम से सजाते हैं,
लिए हो आदमी के खून में डूबे दुधारे तुम,
खड़े हम युद्ध के मैदान में वीणा बजाते हैं,
करो तुम मौत की पूजा, जलाओ दीप मरघट में,
जवानी की हमेशा आरती हमने उतारी है।
तुम्हें तलवार प्यारी है, हमें झंकार प्यारी है।

बुला लाए अगर तुम द्वार पर पतझर ज़माने के,
हमारे भी खजानों में बहारों की कमी है क्या?
लगाओ आग, बरसाकर अँगारे देख लो तुम भी,
हमारी मेघमाला में फुहारों की कमी है क्या?
बजाओ भेरियाँ तुम, हम मगर मल्हार गाएँगे,
करो तुम ध्वंस, हमने सर्जना हरदम दुलारी है।
तुम्हें तलवार प्यारी है, हमें झंकार प्यारी है।

ज़रा बीते हुए इतिहास के पन्ने पलट देखो,
यहाँ जितने हुए तलवार की जय बोलनेवाले,

चले थे सत्य की आवाज़ को पैरों कुचलते जो,
यहाँ जितने हुए हैं सिंधु में विष घोलनेवाले,
सभी ने एक दिन भू पर पड़ी वीणा उठाई है,
सभी ने एक दिन इसकी रुँधी सरगम सँवारी है।
तुम्हें तलवार प्यारी है, हमें झंकार प्यारी है।

बुनो हर बार तुम संसार के तन पर कफन काला,
उठें हम और उड़कर उस तबाही को दफन कर दें,
जहाँ तुम एक घर तोड़ो, वहाँ हम ताज बनवा दें,
जहाँ बगिया उजाड़ो तुम, बहारें हम वहाँ भर दें,
जहाँ दीपक बुझाओ तुम, वहाँ सूरज उगाएँ हम,
अँधेरे से उजाले की लगन अब तक न हारी है।
तुम्हें तलवार प्यारी है, हमें झंकार प्यारी है।

वह सत्य-कर्म की महिमा, गीता का नारा,
वसुधा कुटुंब है, हर मनुष्य से प्यार करो।
धरती के नक्षत्रो ! अँधियारे पर टूटो,
मिट जाओ पर मानवता का सत्कार करो।

अभियान 'बुद्ध' का, शांति-अहिंसा का नारा,
एशिया न केवल, विश्व झुका जिसके आगे।
'गांधी' जिसकी वाणी की तुलना नहीं मिले,
क्या कहूँ, काल का दर्प थका जिसके आगे।

'नेहरू' के फौलादी हाथों की यह मशाल,
रोशनी दे रही है जग के अँधियारे को।
हिंसा के मेघो ! लील नहीं पाओगे तुम,
जगमगा रहे मानव के भाग्य - सितारे को।

यह कोटि-कोटि बलिदानी वीरों का प्रयाण,
इतिहासों की कालिख धो देने आया है।
एशिया, शांति का दूत एशिया, ध्वंस नहीं,
बूढ़े युग का अंगार, जवानी लाया है।

कैसा विरोध ? कैसी विपदाएँ ? कैसा गम ?
यह गीत शांति का जग-भर को गाना होगा।
सौ कवच वेधकर भी विनाश के, आज हमें,
अलका को धरती पर उतार लाना होगा।

पसीना

पसीना हूँ, पसीना हूँ,
धरा के भाल पर जगमग जड़ा जो, वह नगीना हूँ।
पसीना हूँ, पसीना हूँ।

नगीना हूँ कि जिसकी ज्योति से सूरज लजाता है,
अँधेरे का न कोई दाँव जिसको जीत पाता है।
पतन के पाँव जिसके द्वार की दहरी न छूते हैं,
कि जिसके हौसले अब तक पराजय से अछूते हैं।
जगत के आदि से अब तक थकन मुझ तक नहीं आई,
कभी पल को निराशा की झलक मुझ तक नहीं आई।
हज़ारों बार आतप ने जलाने की मुझे ठानी,
बहुत समझा चुका था मैं, ज़रा मेरी नहीं मानी।
सदा संघर्ष का आदी, किसी से मैं नहीं हारा,
मिटाने को मुझे आई, मगर खुद मिट गई धारा।

गई-गुज़री हुई है बात, पर, बिलकुल नई-सी है,
कभी आई इसी थी रात, पर, बिलकुल नई-सी है।
प्रलय ने रोष-भर मेरी बगीची रौंद डाली थी,
कि उसकी बिजलियाँ कैसी भयानक कौंधवाली थीं।
मुसीबत की घटाओं का अजब ही दौरदौरा था,
विनाशी उन हवाओं का अजब ही दौरदौरा था।

मिटाना चाहती वह नाम तक मेरी कहानी का,
मगर जानी न थी वह मोल इस अनमोल पानी का।
समझती थी कि मैंने ज़िंदगी को अब मिटा डाला,
मगर यह आदमी की शक्ति से उसका पड़ा पाला।

प्रलय के बाद बिलकुल ही अकेला रह गया था मैं,
समय के हाथ उजड़ा एक मेला रह गया था मैं।
तभी मेरी जवानी का अमर अभिमान जागा था,
अरे! टकरा गया किससे, मरण सचमुच अभागा था।
प्रलय के वार जितने थे, सभी को झेल आया मैं,
भँवर के, आँधियों के साथ जी भर खेल आया मैं।
हलाहल पी गया इतना, अमरता बन गई चेरी,
स्वयं बंधन बँधे, पर, बँध नहीं पाई प्रगति मेरी।
मरण के शीष पर धर पाँव चलता आ रहा हूँ मैं,
मुझे रोको, मुझे रोको, चुनौती गा रहा हूँ मैं।

नहीं तकदीर कोई और, मैं तकदीर दुनिया की,
पलक झपके नहीं, मैं तोड़ दूँ ज़ंजीर दुनिया की।
समय का चक्र, चाहूँ मैं उसी रफ्तार से घूमे,
नयन खोलूँ कि हर बाधा झुके, आकर चरण चूमे।
कहाँ भयभीत दौड़े जा रहे हो? तुम इधर आओ,
विजय के द्वार छोड़े जा रहे हो, तुम इधर आओ।
पसीना हूँ, मुझे ले लो, नदी के पार उतरो तुम,
न हो भयभीत, कुंदन की तरह सरताज निखरो तुम।

सृजन की पुस्तिका के पृष्ठ बिखरे, जोड़ लाया हूँ,
मनुजता की बही विपरीत धारा, मोड़ लाया हूँ।
भरा युग-युग घड़ा जो पाप का, मैं फोड़ आया हूँ,
हमेशा के लिए मैं हाथ यम के तोड़ आया हूँ।

पसीना हूँ, मुझे मरु में नया मधुवन खिलाना है,
भगीरथ हूँ, मुझे भू पर नई गंगा बुलाना है।
पहाड़ों को करूँ समतल, कि सागर छान डालूं मैं,
मनुजता की अँधेरी राह में नवदीप बालूं मैं।
नहीं अपमान मेहनत का अधिक अब सह सकूंगा मैं,
न वन्दी स्वर्ण-कारा में अधिक अब रह सकूंगा मैं।
नहीं सोता रहूँगा, अब मुझे दुनिया बदलना है,
विषमता के गढ़े से अब मुझे बाहर निकलना है।
मुझे जग के करुण अन्याय की होली जलाना है,
ज़माने सुन, मुझे अब द्वार पर मंज़िल बुलाना है।

हँसेंगे खेत, हरियाली नहीं इनमें समाएगी,
धरा नख-शिख सजी, दुलहन बनेगी, मुस्कुराएगी।
जगत के भाग्य के तारे घटाओं में न डूबेंगे,
किसी के पाँव पथ के कण्टकों से अब न ऊबेंगे।
भटकते हो, नहीं क्या रास्ता तुमको मिला अब तक?
पहुँचना चाहते हो स्वर्ग ? बस, मैं एक ज़ीना हूँ।
धरा के भाल पर जगमग जड़ा जो, वह नगीना हूँ।
पसीना हूँ, पसीना हूँ।

दीपावली : एक प्रतिक्रिया

रोशनी की क्या कमी ! दीपक हजारों जल रहे हैं,
रात है, पर, ज्योति के निर्झर अविरत गल रहे हैं।

पर्व दीपों का, मनाई जा रही दीपावली है,
ये कतारें रोशनों की लग रही कितनी भली है।

हर डगर, हर द्वार, देहरी, रोशनी में डूबी हुई है,
चेतना मेरी न जाने क्यों मगर, ऊबी हुई है।

है बहुत बाहर उजाला, पर, सघन मन का अँधेरा,
खिल न पाता बातियों के साथ जागा प्राण मेरा।

एक दारुण स्वप्न मन की आँख में अंगार जैसा,
जल रहा निर्धूम जिसके क्रोड़ में संसार जैसा।

झिलमिलातीं ये शिखा की रश्मियाँ चिनगारियाँ हैं,
देखता हूँ, जल रहीं इनमें वधुक फुलवारियाँ हैं।

क्या करूँ! तुमसी अमित आँखें नहीं मुझको मिली हैं,
सादगी नीचे न देखूँ, देख लूँ कलियाँ खिली हैं!

पर्व दीपों का, जहाँ देखो दिवाली के दिये हैं,
पर, मुझे लगता कि इनके कंठ विष जैसा पिये हैं।

मैं घटाएँ देखकर पहचान लेता हूँ प्रभंजन,
फूल की ले ओट मुझको वज्र देते हैं निमंत्रण।

हर हँसी के पास, देखो, आँसुओं की वह झड़ी है,
दिल जला कोई मुझे लगता, कहो तुम फुलझड़ी है।

यह भभक जैसे कि बुझने के लिए तैयार हैं हम,
ले, अँधेरे ले, कि तेरी भूख का अधिकार हैं हम।

एक अन्तिम साँस कहती है कि धड़कन थम रही है,
हर शिरा मेरी यही अवसाद छूकर जम रही है।

इस पराजय को विजय का गीत कैसे मान लूँ मैं ?
इस भुलावे को हृदय-संगीत कैसे मान लूँ मैं ?

तुम मनाते हो दिवाली, और मेरी आँख छलकी,
इस प्रभा के पार मुझको, दिख रही तसवीर कल की।

यह कड़क कैसी ? कहाँ की गर्जना ? विस्फोट कैसा ?
स्वप्न है शायद, मगर है सत्य का संकेत जैसा।

यह घटा कैसी, ज़माने को धुएँ ने भर दिया है,
हर कली को एक ज़हरीली लहर ने छू लिया है।

धुंध अँधियारा, बुझी आँखें, न कोई राह सूझे,
फट पड़े ज्वालामुखी, तब कौन किसकी बात बूझे ?

और यह मातृत्व का जो भार लेकर चल रही है,
एक सपनों की नई दुनिया कि जिसमें ढल रही है।

कोख में ही तुम कुचलना चाहते संसार इसका,
हाय, इतना तो नहीं सस्ता सनातन प्यार इसका।

यह बगीची, यह छटा, यह रूप जलने को नहीं है,
क्यारियाँ जो खून से सींचीं, उजड़ने को नहीं हैं।

यह बहन-बेटी, कि ये माँ-बाप, ये भाई हमारे,
और ये ऊँची नज़रवाले, कि हमराही हमारे।

पैर अपने काटकर तुझको न जाने क्या मिलेगा ?
सोच ले, जो भी जलेगा घर, कि वह तेरा जलेगा।

और अब भी तू नहीं बदला अगर अभिमानवाले,
तो उठा ले, और ऊपर हाथ 'बम्बों' के उठा ले।

सुन, जवानी मौत की ललकार से डरती नहीं है,
जानती है, देह नश्वर, आत्मा मरती नहीं है।

सुन कि मैं इन्सान हूँ, तुझको चुनौती दे रहा हूँ,
आज दुनिया की तपन का बोझ सिर पर ले रहा हूँ।

आदमी, जिसको प्रलय तक भी न ऐसे लील पाई,
व्यर्थ तूने 'धूलि अणु की', इन गुलाबों पर उड़ाई।

है कला जीवित अभी, रचना अभी हारी नहीं है,
फूल के दिन हैं, अभी अंगार की बारी नहीं है।

देखना है वह कि जो चट्टान पर अंकुर उगा है,
यह न जड़ता में हिला है; यह न आँधी में डिगा है।

आदमी की आह से मत खेल रे! जलना पड़ेगा,
कल तुझे अंगारवाला पथ बदल चलना पड़ेगा।

रोशनी की क्या कमी, दीपक हजारों जल रहे हैं,
रात है, पर, ज्योति के निर्झर अचिन्तित गल रहे हैं।

पर्व दीपों का, मनाई जा रही दीपावली है,
ये कतारें लोचनों को लग रहीं सचमुच भली हैं।

विप्लव

ज्वालाओं की गलन, झरन लावा की, भूचालों का कंपन,
  बरसातों की झड़ी, वेग सरिता का, मैं सागर का मंथन।
दीर्घ कड़क हूँ मैं बिजली की, सुनकर फट जाएगी छाती,
  जहाँ गिरी, मिट गए पुराने, नये-नये अंकुर सरसाती।
आहों में पलती, कराह में खिलती मस्त जवानी मेरी,
  आँसू में हँसती, दाहों में अनल उगलती वाणी मेरी।
बाधा की चट्टान फोड़कर बहना सीखा, मैं वह झरना,
  मुझे लगा लो गले, कौन-सा कठिन सिंधु के पार उतरना।
कूल-कगारों में बँधकर बहनेवाली मेरी न धार है,
  हर आँधी के लिए जीर्ण कुटिया का मेरा खुला द्वार है।
मैं आता हूँ युग की धुँधली, सड़ी-गली तसवीर बदलने,
  फूलों की माला में जकड़े पाँवों की ज़ंजीर बदलने।
मैं आता हूँ थके जमाने की फूटी तकदीर बदलने,
  जोकि धर्म पर चले, पाप की आता हूँ शमसीर बदलने।
अपनी पर आ जाऊँ जो मैं, यह जर्जर व्यापार बदल दूँ,
  गीत बदल दूँ, राग बदल दूँ, बीण बदल दूँ, तार बदल दूँ।
कोयल की मादक वाणी में जग का हाहाकार बदल दूँ,
  एक ग्राम क्या? एक नगर क्या? मैं सारा संसार बदल दूँ।
साँसों की कराह से उठनी दर्द-भरी आवाज़ बदल दूँ,
  नीड़ बदल दूँ, गाज बदल दूँ, तख्त बदल दूँ, ताज बदल दूँ।

स्वर्ग बनाऊँ दीप थाल का, धरती की आरती उतारूँ,
कोटि-कोटि तारे पिघलाऊँ, मैं माटी के चरण पखारूँ।
देवों के नन्दन की सुषमा, वसुधा के मरुथल पर वारूँ,
एक गगन के पास, धरा पर सौ-सौ सूरज-चाँद सँवारूँ।
ज्वालामुखियों के विस्फोटक अट्टहास-सा मेरा गर्जन,
क्षुद्र पाप के घट, कब तक कर पाओगे अपना संरक्षण?
युग की तरुण चेतना अपना रक्त-दान कर जिसे जलाती,
सावधान, मनचली आँधियो! बुझा सकोगी मेरी बाती?
कुटियों में ले जन्म, महल की मीनारों के दर्प हिलाऊँ,
प्राण-प्राण को स्वाभिमान पर मर मिटने का मंत्र सिखाऊँ।
मेरी भूख विचित्र, भूख खाता हूँ और प्यास पीता हूँ,
पीड़ा, दैन्य, गरीबी, आँसू, शाप-ताप लेकर जीता हूँ।
तृप्त न तब तक जब तक जग में अन्यायों का शेष लेप है,
गगन उदासी में डूबा है, यह धरती सह रही क्लेश है।
सावधान, ओ बेबस हाहाकारों पर इतरानेवालो!
धरती को निर्दोष रक्त की धारा में नहलानेवालो!
इतिहासों के पृष्ठ स्वार्थ की स्याही से रँग जानेवालो।
कंकालों पर सोने-चाँदी के मीनार सजानेवालो!
इंगित एक, बदल जाएगा दुनिया का पल-भर में खाका,
तनी रहेगी सदा-सदा नभ छूती मेरी न्याय-पताका।
इन जीवित लाशों में केवल रख देता हूँ मैं चिनगारी,
ये जगती हैं इधर, गुफाएँ उधर खोजतीं प्रलय विचारी।
कैसा मस्त जुनून, हाथ से देती शीप उतार जवानी,
कैसा मस्त जुनून कि पी लें अंजलि से सागर का पानी।
जिनकी रोटी छीन रहे हो, यही तख्त छीन लें तुम्हारा,
इनके हाथ उठें, खुद पास नहीं आए वह कौन किनारा?
इतिहासों के पृष्ठ-पृष्ठ से पूछो मेरी रामकहानी,
युग करवटें बदलते, जब-जब मचले मेरी क्रुद्ध जवानी।

वदला है भूगोल, समय ने ली है जी-भरकर अँगड़ाई,
वदली आसमान वनती है, वनते हैं पहाड़ लघु राई।
जर्जर तिनके चट्टानों की छाती छेद चले आते हैं,
धरतीवाले कवच गगन का हँसकर वेध चले आते हैं।
वना 'कृष्ण' का रोप, कालिया के फन पर मैं खुलकर नाचा,
कलुप पाप के गाल नहीं सह पाते मेरा एक तमाचा।
वना 'राम' के कर का खर-शर फोड़ी अहंकार की छाती,
ललकारा तो रात ढल गई, विहग मुग्ध गा उठे प्रभाती।
ललकारा तो आसमान की किरणों ने सोना वरसाया,
ललकारा तो मधुमासों ने धरती को मखमल पहनाया।
'शंकर' का तीसरा नेत्र हूँ, युग-परिवर्तन की आँधी हूँ,
सुरा न मेरे पास, सदैव हलाहल देने का आदी हूँ।
डरो नहीं, यह कालकूट के घूंट, कि हँसकर पीते जाओ,
जहाँ मौत मर जाय, वहाँ तुम निर्भय होकर जीते जाओ।
आँखें खोलो, मृतक समान हुआ करते हैं सोनेवाले,
संघर्षों के क्षण तन्द्रा के अलस-नशे में खोनेवाले।
धरती की छाती पर वोझा हैं कि मौन भय ढोनेवाले,
रखे शीप पर हाथ, किनारे वैठे-वैठे रोनेवाले।
भँवरों से खेलो, लहरों में उठकर अपनी तरी तिराओ,
छाती चीर चलो पानी की, उठती लाटों से टकराओ।
आँसू वाँट रहे हो जग में? सदा मधुर मुसकान लुटाओ,
उर के घाव सँवारो, पीर सहेजो, मीठे गान लुटाओ।
जियो वने आदमी और आदमी वने मर जाना होगा,
एक साँस भी शेप कि जव तक, काँटों पर मुसकाना होगा।

गणतंत्र दिवस

गणतंत्र दिवस है आज, मोद का महापर्व,
जनता के वलिदानों की अमर कहानी है।
उस पूंजी का सम्मान आज हम करते है,
आजादी की कीमत जो पड़ी चुकानी है।

वर्गो - भेदों के कवच भेदकर हम अनेक,
इस दिन समता के सूत्र खोजकर लाए थे।
संघर्पो में जूझे, वाधाओं से उलझे,
लड़ते - भिड़ते अपनी मंज़िल तक आए थे।

मिट्टी गोड़ी थी, एक वगोचा सींचा था,
उसमे विकास के कुछ अँखुए उगवाए थे।
कलमें रोपी थी, सड़ी डालियाँ छाँटी थी,
वर्पो मे पहली वार जरा मुसकाए थे।

छँट गया अँधेरा था, पर, दूर सवेरा था,
हमको प्रभात की लाली अभी वुलानी थी।
किरणें फूटी, पर, शवनम वरस न पाई थी,
सूखी-मुरझाई वगिया अभी खिलानी थी।

आज़ादी मिल जाना बस मित्र ! नहीं काफी,
उसकी रक्षा का बोझ और भी भारी है।
आज़ादी मिल जाए जैसे हम नींव रखें,
यह आगे भवन बनाने की तैयारी है।

आधारशिला रखकर हम हाथ रोक बैठे,
साथी ! सच मानो, हमसे भारी भूल हुई।
परिणाम यही होना था, फूल बने काँटे,
सपनों की केसर महक न पाई, धूल हुई।

गणतंत्र दिवस है आज, मगर फीका-सा है,
मन की उमंग का रंग नहीं खिल पाया है।
अब तक मस्ती पर पड़े भूख के ताले हैं,
अब तक अभाव की जन-प्राणों पर छाया है।

दिन पर दिन और साल पर बीते चले साल,
सूरज का तेजस्वी मुखड़ा न दिखाता है।
अब तक साधों का पोत पीर के सागर में,
डगमग - डगमग, डूबा - डूबा उतराता है।

झंडियाँ, झालरें, बाजे, दीपक - मालाएँ,
रेखा पीटना - मात्र, सच्ची अभिव्यक्ति नहीं।
तब तक हर पर्व अधूरा है भाई ! जब तक—
जनता के तन - मन में आ पाई शक्ति नहीं।

त्योहार मनाना चाहो तो सबसे पहले,
भूखी - नंगी इस जनता को समृद्ध करो।
झंडियाँ हिलाकर समय गँवाने के बदले,
निर्धनता और अभावों से तुम युद्ध करो।

दो-चार किनारे पर पहुँचे तो क्या पहुँचे,
पहले पूरा बेड़ा का बेड़ा पार करो।
तब कहो आज छब्बीस जनवरी आई है,
झंडियाँ हिलाओ, चाहे जय-जयकार करो।

तुलसी-रत्ना-वन्दन

संस्कृति के निस्पंद, शून्य मानस को धड़कन देनेवाले !
स्वीकारो इस क्षुद्र लेखनी का अपूर्ण, तुतला अभिवादन ।
दबी, पिसी, जर्जर मानवता के अजस्र प्रेरणा प्रस्रवण !
तुम सुहाग मेरी हिन्दी के, चेतनता तुमसे चिरचेतन ।
पहली बार धरा पर खोली आँख और 'जय राम' पुकारा,
दिशा-दिशा में गूंज गया स्वर 'राम-राम, जय राम' तुम्हारा ।
पले 'नरहरि' स्वामी के गृह, भीख माँग बीते शैशव-पल,
और एक दिन स्वाभाविक मँडरा आए यौवन-घन चंचल ।
'रत्ना' मिली कि जैसे उजड़े मानस को शृंगार मिल गया,
पुलक मिली शीतल लहरी से, अवगुंठित मन-कुसुम खिल गया।
रत्ना थी, रत्ना अब केवल, रत्नामय तुलसी की रग-रग,
प्यार और ममता की छाया ही तुलसी का अब सीमित जग ।
एक दिवस सहसा चिरसंगिनि जा पहुँची जब अपने पीहर,
यह वियोग-भय-वाड़व-ज्वाला सह न सका कोमल मन चंचल ।
घनी अँधेरी, नीरव रजनी, चढ़ी बाढ़, सरिता प्रलयंकर,
विरह-दग्ध व्याकुल अंतर को, लगा कल्प वह एक-एक पल ।
कूद गए प्राणों की बाजी लगा, कहाँ देही की ममता ?
एक स्नेह की बूँद, सहस्रों सागर की एकाकी समता ।
बाँध लिया कसकर बाहों में, विस्मय से अवाक् मूक, चितवन,
"इतना स्नेह राम से होता किंचित, हम दोनों तर जाते,

हाड़-माँस की नश्वर काया पर यह कैसी ममता प्रियतम !"
तिरस्कार से, क्षोभ, घृणा से, बोल उठी रत्ना अकुलाते ।
एक तिरस्कृत लघु पल केवल बदल गया जीवन की धारा,
ऐसे अक्षय दीप बने तुम, दास बना जिसका अँधियारा ।
आज तुम्हारे साथ प्रथम वंदन करता हूँ उस नारी का,
अंधकार के धुँधले पथ की चिरआभासित उजियारी का ।
बुझी हुई प्रतिभा की बाती, अविनश्वर आलोक बनीं तुम,
क्यों न करूँ अभिवादन बोलो, लौ की पहली चिनगारी का ।
तुम न अगर होतीं कल्याणी ! तुलसी कैसे तुलसी होते ?
तुम न प्रभा की धारा बनतीं, कैसे खिल पाता यह मधुबन ?
तुम प्रबोध बनकर आई थीं, तब खुल पाए ये अन्तर्दृग,
मानस का प्रासाद तुम्हारी अमर प्रेरणा का पावन घन ।
भू-अलका का सामंजस्य, प्रथम जीवन-दर्शन-अन्वेषण,
जन-जन की गूंगी वाणी का तेरी कला बनी अभिव्यंजन ।
जीवन का प्रत्येक पक्ष उस अमर लेखनी से आलोकित,
सौरभश्री से अमर शिरोमणि! अब तक है जग-जीवन विकसित ।
बर्बरता को खुली चुनौती दी तुमने अपनी कविता से,
मानहीन नरता को तुमने स्वाभिमान का मंत्र पढ़ाया ।
सत्य, न्याय, उत्सर्ग, प्यार, समवेदन की भाषा सिखलाई,
अहंकार, मिथ्या महानता-गिरि पर, लघुता-केतु चढ़ाया ।
देही मिटी किंतु तुलसी के गीत अजर, साधना अमर है,
जब तक धरा-गगन, रवि-शशि हैं, मानस जन-जन का चिरसंबल,
तब तक रावण सोने की लंका के साथ जलेगा भू पर,
राम विजयश्री शोभित प्रतिपल, जीवन का सिंहासन अविचल
युग-युग तक खण्डित मानवता के विकास के द्योतक तुलसी !
त्यागी, तपी, मनस्वी, महामुक्ति के सुलझे साधक तुलसी !
जीवन की वाणी के एक अकेले पावन पूरक तुलसी !
काल-प्रवर्तक, नरता की शुचि मर्यादा के गायक तुलसी !
स्वीकारो इस क्षुद्र लेखनी का अपूर्ण, तुतला अभिवादन ।

कोयल से

अमृत-मंत्र तेरी वाणी में, कोयल ! जी भर बोल,
स्वर की सरस माधुरी से प्राणों में नवरस घोल।

कितना तपकर पाई होगी ऐसी कला निराली,
जिस पर न्योछावर जग-भर का सुरा-कोष मतवाली!
कैसा सम्मोहन ! प्राणों में सात सिंधु उफनाए,
नर्तित आरोहण-अवरोहण पर भूगोल-खगोल।
अमृत-मंत्र तेरी वाणी में, कोयल ! जी भर बोल।

तन काला है, सोच रहा हूँ, मन कितना सुन्दर है,
जिसके तन्मय बोल कि पिघला पाहन का भी उर है,
कौन विरह तप बना मिली जो यह वाणी वरदानी,
झूल रहे चल-अचल स्वरों की लहरों का हिन्दोल।
अमृत-मंत्र तेरी वाणी में, कोयल ! जी भर बोल।

युग-युग थके, अथक तू लेकिन, अविचल गाती जाती,
कैसा निष्ठुर पिया, न आया, कब से उसे बुलाती,
मैं हूँ एक कि दो पल मन को विरह-व्यथा के भारी,
तेरे संयम से मैं अपनी रहा विकलता तोल।
अमृत-मंत्र तेरी वाणी में, कोयल ! जी भर बोल।

बरसाती रह इन पीड़ित प्राणों पर मधु की धारा,
भूला अपनी पीर सखी, जो मैंने तुझे निहारा.
मेरे विकल हृदय में फूटे निर्झर विश्वासों के,
पिला-पिला स्वर-सुरा सहेली! यह वाणी अनमोल।
अमृत-मंत्र तेरी वाणी में, कोयल! जी भर बोल।

हरिजन-बाला

अभी सवेरा दूर, अँधेरा लेकिन हारा-हारा,
गए सितारे डूब ज्योति का पहला मिला इशारा।
सारा जग सोया है, इसने अभी न हलचल पाई,
कहीं-कहीं खग झाँक उठे नीड़ों से देख ललाई।
सब सोए हैं, दूर कुटी में बुझी दीप की बाती,
एक सहज अँगड़ाई लेती वह जागी मदमाती।
तन्द्रालस, झपके-से लोचन, पलक नशीले, भारी,
नरम हथेली मींड़ उठी है, चलने की तैयारी।
घुंघरी, खुली लटें माथे पर उलझी-उलझी खेलीं,
नई टहनियों-सी उँगली से सुलझा उठी नवेली।
श्याम रंग, मेघों के रँग-सा, माँग खेलती बिजली,
इन्द्रधनुष की रेख बाँटती दो भागों में बदली।
गठे अंग श्रम के आदी-से, माँसल गोरी काया,
अभी फूटता आता यौवन सावन-सा सरसाया।
यौवन और रूप का ऐसा संगम अधिक न देखा,
आकर्षण की सीमा सम्मुख मधुराई का लेखा।
फटे वसन आधा तन ढाँके, खुला हुआ तन आधा,
निर्धनता के क्रूर पाश ने इसे जन्म से बाँधा।
एक हाथ में डलिया, दूजा थामे हुए बुहारी,
कटि में कसे छोर लहँगे का श्रम की चली सवारी।

घर-घर की गंदगी बहाती चलो गंग की धारा,

श्रद्धा से विभोर हो मैंने कितना उसे निहारा।

गली, सड़क, फुटपाथें, आँगन, घर-घर झाड़ चली है,

स्वास्थ्य और सुख का घ र-घर में झंडा गाड़ चली है।

सेवा इसका धर्म, कर्म सेवा, सेवा है दर्शन,

बचपन से ही तपा कर्म की ज्वाला में यह जीवन।

यह संतोषी दो रोटी के टुकड़ों में मुसकाती,

बाँट रही निर्मलता जग को, बदले में क्या पाती ?

फटे वसन, टूटी-सी कुटिया, जीर्ण फूस का छप्पर,

घर-घर जूठन पर इसके जीवन का क्रम है निर्भर।

यह उपेक्षिता! फिर भी जीवन शाप नहीं कहती है,

अच्छा-बुरा मिले जो कुछ भी उसमें खुश रहती है।

बड़े सवेरे से ही इसका जीवन-क्रम चलता है,

बड़ी रात तक इसको पल-भर चैन नहीं मिलता है।

सबकी-सी साँसें हैं इसकी, इन सबका-सा तन है,

सबके-से अवयव हैं, सबसे ज़्यादा सुन्दर मन है।

सबकी-सी मद-भरी उमंगें, युवक-हृदय की चाहें,

दुख-सुख, आशा और निराशा, मादक हँसी, कराहें।

यह राधा भी अपने कान्हा के प्राणों की प्यारी,

पलक-पाँवड़े बिछा देखती पथ यह भी सुकुमारी।

गली-गली इसका वृन्दावन, कुआँ-कुआँ पनघट है,

सब तरुवर तमाल-तरुवर हैं, नाले यमुना-तट हैं।

यह समाज की चंचल तितली नहीं, प्यार की महिमा,

नहीं प्रदर्शन, नहीं बनावट, मूर्तिमान यह सुषमा।

फूल-फूल पर यह उच्छृंखल फिरी नहीं ललचाती,

एक फूल से प्यार, उसी पर यह सर्वस्व लुटाती।

प्यार सीखना है तो कोई निर्धनता से सीखे,

प्यार सीखना है तो कोई इस लघुता से सीखे।

तीज और त्योहार सभी कुछ इस सरला को भाते,
नाच रही यह, प्राण कि इसके फूले नहीं समाते।
होरी, कजरी, सरस सावनी यह तन्मय गाती है,
ऊल-ऊल झूले पर पेंगें लेती, मदमाती है।
खुली हवा में इसने समरसता से जीना सीखा,
संघर्षों का गरल सुधा सम इसने पीना सीखा।
यह अस्पृश्य, उपेक्षित, इसको सबकी घृणा मिली है,
इसे देखकर लेकिन कवि के मन की कली खिली है।
कीचड़ में हो, पर हीरे की आब नहीं जाती है,
मेरी करुण भावना तेरे संग बही जाती है।
श्रम से पावन, सेवा से महान क्या है जीवन में ?
तूने जो कुछ दिया, मिलेगा दुनिया को किस धन में?
तेरी पूजा, श्रम की पूजा, करता हूँ अभिनन्दन,
ओ साकार तपस्या! तुमने बाँध लिया कवि का मन।

गीत

हर मुश्किल आसान हो गई,
तुमसे जो पहचान हो गई।

बीत गए जैसे सब दुर्दिन,
नये-नये से लगते पल-छिन,
अन्तर की करुणा-धारा ही
प्रीति-पगी मुसकान हो गई।
हर मुश्किल आसान हो गई,
तुमसे जो पहचान हो गई।

सरिता को सागर का संबल,
कलियों का यौवन है अलि-दल,
मिला गगन को जब क्षिति का बल,
सब संसृति गतिमान हो गई।
हर मुश्किल आसान हो गई,
तुमसे जो पहचान हो गई।

बिना प्यार तो हृदय अधूरा,
चाँद कहाँ राका बिन पूरा,

प्राण विना विधवा है काया,
जीवन - निशा विहान हो गई।
हर मुश्किल आसान हो गई,
तुमसे जो पहचान हो गई।

ज्योति नयन, पग ने गति पाई,
साहस में कौंधी तरुणाई,
निश्चय का दृढ़ता से परिणय,
प्रीति मुझे वरदान हो गई।
हर मुश्किल आसान हो गई,
तुमसे जो पहचान हो गई।

आज बहुत गाने का मन है

मेघों के घट सिर पर धरकर,
वह बरखा - गूजरिया आई,
अलियों पर बरसा संजीवन,
कलियों पर बरसी तरुणाई,
वेणी खोल, केश बिखराए,
बिजली की मुसकान सँवारे,
तन ही क्या, मन भीगा मेरा,
यह कैसी गागर छलकाई ?
बौराया अम्बर दीवाना,
मतवाला आँगन - आँगन है।
आज बहुत गाने का मन है।

छेड़ रही कोयलिया मन की—
वीणा के सोए तारों को,
'पिया - पिया' दे रहा पपीहा,
और जवानी झनकारों को,
बूंद - बूंद तृष्णा बन बरसी,
बोल उठी गूंगी आकुलता,
हवा लपट दे रही बावली—
सुधियों के इन अंगारों को,

तुमसे दूर न रिमझिम-रिमझिम,
तुमसे दूर कहाँ सावन है?
आज बहुत गाने का मन है।

दूर-दूर तक हरियाली के
चंचल सागर लहराते हैं,
वल्लरियाँ ऊपर उठती हैं,
तरुवर नीचे झुक आते हैं,
मन भर-भर आता है मेरा,
शब्द नहीं कह पाते जिसको,
मुक्त पवन पर पंख तोलकर,
यही चाह पंछी गाते हैं,
जो उमंग सरिता की धुन है,
जो उमंग सागर का धन है।
आज बहुत गाने का मन है।

आओ, बाँह जुड़ाकर बैठें,
आओ, इन झड़ियों को झेलें,
आओ, मिलकर पेंग बढ़ाएँ,
आओ, इन लहरों से खेलें,
तुम केकी बनकर इतराओ,
मैं 'पी-पी' की टेर लगाऊँ,
जीवन गाते-गाते बीते,
वह उमंग बरखा से ले लें,
गाओ तो जीवन यौवन है,
गा न सको तो बस रोदन है।
आज बहुत गाने का मन है।

क्या कहूँ तुमसे, तुम्हारी चाँदनी से,

सौ गुना उन्माद मेरे पास भी है।

ओ शरद् के चाँद !

तुम-से रूपवाला चाँद मेरे पास भी है।

तुम कहोगे, चाँद मेरा भी कभी तो,

काल के विकराल हाथों से छलेगा !

और तव मेरे लुटे-उजड़े हृदय को,

दर्द-हाहाकार तुम जैसा मिलेगा !

पर सुनो, मेरी कला इस चाँदनी को

रूप-यौवन की अमरता दे चुकी है,

काल के कर, सी न पाएँगे अधर जिसके,

अनश्वर नाद, मेरे पास भी है।

ओ शरद् के चाँद !

तुम-से रूपवाला चाँद मेरे पास भी है।

उपालंभ

ऐसे गरज रहे हो बादल ! जैसे भरे हुए हो,
मुझे ज्ञात है, सिर पर गागर खाली धरे हुए हो।

पानी हो तुममें तो बरसो ! प्राण जले जाते हैं,
भरे हुए तो नहीं याचना ऐसे ठुकराते हैं,
और अगर जलधर भी हो, तो यह इतराना कैसा !
मेरे सागर से चेतनता लेकर हरे हुए हो।
ऐसे गरज रहे हो बादल ! जैसे भरे हुए हो,
मुझे ज्ञात है, सिर पर गागर खाली धरे हुए हो।

या फिर बड़े कृपण हो बारिद ! तुम ओछे हो मन के,
सिंधु सहेजे बैठे, छींटे दे न रहे जल-कण के।
मैं भी देखूँ, छोटी गागर कितनी भर सकते हो,
देखोगे, पतझर के तरु-से तुम भी झरे हुए हो।
ऐसे गरज रहे हो बादल ! जैसे भरे हुए हो,
मुझे ज्ञात है, सिर पर गागर खाली धरे हुए हो।

जग की रीति यही है, कोई याचक, कोई दानी,
तुम देते हो, हम पाते हैं, अपनी यही कहानी,

भक्त न होता तो पूजा का पत्थर, पत्थर होता,
तुम तारोगे मुझे ? अभी तो मुझसे तरे हुए हो।
ऐसे गरज रहे हो बादल ! जैसे भरे हुए हो,
मुझे ज्ञात है, सिर पर गागर खाली धरे हुए हो।

•

गीत

पहले ही पीड़ा क्या कम थी,
जो सुधि की यह पीर दे गए!

वंचित रहा जगत में सुख से
मेरे प्राण बहुत उन्मन थे,
आँसू थे, ज्वाला थी, गम था,
दुनिया के सौ-सौ बंधन थे,
मुक्त नहीं था मैं तब भी तो,
एक नई ज़ंजीर दे गए।
पहले ही पीड़ा क्या कम थी,
जो सुधि की यह पीर दे गए!

तब दुख में मुसकाना तो था,
वह भी बात नहीं रहने दी,
तब मन ही मन रो लेता था,
वह बरसात नहीं रहने दी,
और बहुत कमज़ोर आँख है,
क्यों-तुम इतना नीर दे गए?
पहले ही पीड़ा क्या कम थी,
जो यह सुधि की पीर दे गए!

जब कोई अवलंब नहीं था,
एक मुझे तुम मिले सहारा,
मैंने समझा, मेरी निर्बल तरी—
पा गई आज किनारा,
मधुर स्वप्न-से आए, लौटे,
मुझे विरह का चीर दे गए।
पहले ही पीड़ा क्या कम थी,
जो यह सुधि की पीर दे गए!

गीत

तुम बिन मेरे नीरव मन में,
कौन भरेगा कहो उजाला?

आँखों में सावन के घन हैं,
प्राणों में पीड़ा मतवाली,
काली निशा रही मेरे घर,
कभी नहीं आई दीवाली,
एक किरण-से तुम आए थे,
सो भी रूठे, बिछुड़ गए हो,
अधर छू सके थे बस प्याला,
तोड़ दिया, यह क्या कर डाला?
तुम बिन मेरे नीरव मन में,
कौन भरेगा कहो उजाला?

खोकर तुम्हें, कहूँ क्या? मेरे—
जीवन में अब शेष रहा क्या?
सारे फूल चुन लिए, बोलो,
मधुवन में अब शेष रहा क्या?
काँटे बचे सहेजे हूँ मैं,
जो तुम दो स्वीकार करूँगा।

तुम न बुझाओ, तो न बुझेगी,
मेरे विकल हृदय की ज्वाला।
तुम बिन मेरे नीरव मन में,
कौन भरेगा कहो उजाला?

मेरे प्यासे प्राण एक, बस,
तेरी राह निहारा करते,
संघर्षों के बीच प्यार के—
वट की छाँह निहारा करते,
गीतों की तूलिका लिए मन,
तेरे चित्र बनाया करता,
लगन पिरोती रहती निशि-दिन,
आँसू से पूजा की माला।
तुम बिन मेरे नीरव मन में,
कौन भरेगा कहो उजाला?

गीत

तुम-सा पारस प्राण परस ले,
यह माटी कंचन वन जाए।

यह वगिया जिसके फूलों ने,
पल-भर कभी वहार न देखी,
डालों ने शृंगार न देखा,
पातों ने जल-धार न देखी,
जिसकी कोयल कूक न पाई,
सूनी रही सदा अमराई,
तुम घन-घटा! निमिप-भर वरसो,
यह निर्जन नन्दन वन जाए।
तुम-सा पारस प्राण परस ले,
यह माटी कंचन वन जाए।

जग के नाग-पाश में जकड़ी,
घुली जा रही मेरी काया,
प्राणों पर पीड़ा का तम है,
कोई सपना निखर न पाया,
ऐसे ही विधवा साधों का—
जीवन क्षार हुआ जाता है,

ममता की किरणें दे जाओ,
मुझे मुक्ति बंधन बन जाए।
तुम-सा पारस प्राण परस ले,
यह माटी कंचन बन जाए।

कब तक और रहे धुँधुआती,
स्नेह बिना दीपक की बाती,
तुम अवलंब कहीं बन जाते,
यह आँधी से आँख मिलाती,
सूनी रात, अँधेरा गहरा,
जीवन पर मावस का पहरा
तुम-सी स्वर्ण-किरण मुसकाए,
यह अंजन चंदन बन जाए।
तुम-सा पारस प्राण परस ले,
यह माटी कंचन बन जाए।

गीत

फिर छेड़ो मन की वीणा के—
ये अलसाए तार सलोनी !

ये देखो सावन के बादल,
वह देखो चपला मतवाली,
ये रिमझिम बूंदों की लड़ियाँ,
वह कूकी कोयलिया काली,
दूर कहीं 'पी-पी' की धुन में,
प्राणों का श्रृंगार उतरता,
मेरे ही उर पर पाहन-सा,
क्यों यह सुधि का भार सलोनी ?
फिर छेड़ो मन की वीणा के—
ये अलसाए तार सलोनी !

देख रहा डालों पर झूले,
झूलों में यौवन के झोंके,
झोंकों में गीतों का मेला,
रोके कोई इनको रोके,
सारा जग डूबा सावन में,
मैं विरही आहों में डूबा,

ये आँसू, ये सुधियाँ, पीड़ा,
बस मेरा संसार सलोनी !
फिर छेड़ो मन की वीणा के—
ये अलसाए तार सलोनी !

वह सावन, सावन था, मुझ पर,
अलकों की बिखरी घन-माला,
नयनों के प्यालों से छल-छल,
कितनी ढली प्रणय की हाला,
वे झड़ियाँ, वह झूला, झोंके,
वह मादक मुसकी बिजली-सी,
ये सूनी-सूनी रँगरलियाँ,
वैरिन मेघ-मल्हार सलोनी !
फिर छेड़ो मन की वीणा के—
ये अलसाए तार सलोनी !

वे कोयल के प्रणय-सँदेशे
सुन-सुनकर तेरा सकुचाना,
लाज-भरी पलकों का झुकना,
चितवन का बागी हो जाना,
वह प्यासे नयनों की लाली,
वे उमगीं प्राणों की साधें,
और कहूँ क्या तुमसे ? मुझको,
मातम यह त्योहार सलोनी !
फिर छेड़ो मन की वीणा के—
ये अलसाए तार सलोनी !

गीत

सिंधु के सौ ज्वार अंतर में लगे लेने हिलोरें,
चाँद छाती से लगाने आज मेरे प्राण मचले।

आज तक निर्जीव थीं जो, उन लहरियों में जवानी,
आज वाणी बन गई जो घुट रही अब तक कहानी,
हर लहर में एक बिजली, हर लहर में एक आँधी,
नभ, धरा पर खींच लाने आज मेरे प्राण मचले।
सिंधु के सौ ज्वार अंतर में लगे लेने हिलोरें,
चाँद छाती से लगाने आज मेरे प्राण मचले।

राह में इतने प्रभंजन थे कि जी भर जल न पाया,
आँधियों ने दीन बाती को बहुत अब तक सताया,
इस पराजित वर्तिका को, प्यार का संबल मिला है,
सुन, कि दीवाली मनाने आज मेरे प्राण मचले।
सिंधु के सौ ज्वार अंतर में लगे लेने हिलोरें,
चाँद छाती से लगाने आज मेरे प्राण मचले।

चाँद ! मेरे सामने तुम, आज भावों की विजय है,
साधना पूरी हुई, वरदान मिलने का समय है,
लग रहा है व्योम की निस्सीमता भर लूँ भुजा में,
हो गया है क्या न जाने! आज मेरे प्राण मचले।
सिंधु के सौ ज्वार अंतर में लगे लेने हिलोरें,
चाँद छाती से लगाने आज मेरे प्राण मचले।

एक शरद्-निशा

यह शरद् की रात भी कितनी सुहानी है !
और मेरी आँख में दो बूंद पानी है।
यह घड़ी ! फिर लोचनों में नीर आया है !
लग रहा जैसे मुझे तुमने बुलाया है।
चाँदनी ऐसी वहाँ भी छा गई होगी,
और मेरी याद तुमको आ गई होगी।
मैं यहाँ हूँ, तुम वहाँ हो, दृग भरे होंगे,
घाव मन के हो गए ज्यादा हरे होंगे।
प्राण में उमगी अनोखी सुगबुगी होगी,
तब जवानी बोझ-सी तुमको लगी होगी।
चौंक चारों ओर तुमने खूब देखा है,
खिंच गई आकाश पर यह ज्योति-रेखा है।
सोचती होगी, हमारे बीच दूरी है,
यह शरद् की रात भी कितनी अधूरी है !
और तुमको याद वे दिन आ गए होंगे,
कोयलें वे, वे पपीहे गा गए होंगे।
चाँद ऐसा ही, सलोनी चाँदनी ऐसी,
होश ले जाती हवा उन्मादिनी ऐसी।
यामिनी थी, प्यार था, उन्माद था, हम थे,
सो गए जाने कहाँ संसार के गम थे।

लाज भुजबंधन हमारे तोड़ देती थी,
और नीरवता उन्हें फिर जोड़ देती थी।
वह समाँ, वह रंग, वह रस, आज सपना है,
उम्र-भर संगी! हमें ऐसे कलपना है।
वह निशा अब रह गई केवल कहानी है,
प्यार की संसार ने कीमत न जानी है।
यह शरद् की रात भी कितनी सुहानी है!
और मेरी आँख में दो बूंद पानी है।

तुम

फटी पौ, किरण - दल कि जैसे गगन की—
नसों में लगी दौड़ने रक्त - धारा,
अँधेरा धुला, जागरण की घड़ी है,
नई चेतना ने जगत् को सँवारा।

उधर व्योम की बाल-ऊषा नखत की—
सुमन - सेज से जागकर मुस्कराई।
इधर यह उषा - अंगना ले रही है,
निशा के उतरते नशे की जम्हाई।

छुटे, श्याम, कुंचित, मसृण कुंतलों को,
किरण - उँगलियों से हटाया गया है।
कि जैसे जगत् का सघन तम प्रभा के—
सुकोमल करों से मिटाया गया है।

नयन, दो सुघर प्यालियों में कि जैसे,
गगन का निचोड़ा गया रंग नीला।
नयन, दो सुरा - कूप छल - छल छलकते,
पिए जा रहा है हृदय मंत्र - कीला।

चपल पुतलियाँ दो, कि दो नील नीलम,
किसी स्वर्ण के आभरण में कसे हैं।
चपल पुतलियाँ दो, कि दो बाल-भौंरे,
किसी फूल की गोद में आ बसे हैं।

अधर पर हँसी, इन्द्रधनुषी विवर से
सुधा की बही फूटकर तेज धारा।
अधर पर हँसी, ज्यों किसी नवकली को
किसी भृंग का मिल गया हो इशारा।

लगा ज्यों सवेरे - सवेरे सलोना,
किसी रूप-सर में कमल खिल गया हो।
भ्रमर, मुग्ध मन, चल दिया दौड़ चंचल,
बड़ी साध थी, आज धन मिल गया हो।

तुम्हें देखकर यों लगा, ज्यों युगों की—
सिमट एक पल में मधुर साध आई।
तुम्हें देखकर यह लगा ज्योंकि सुषमा,
स्वयं देह धर सामने जगमगाई।

तुम्हें छू लिया तो लगा उँगलियों ने
विकल बिजलियों का बदन छू लिया हो।
थके प्राण ने चेतना बाँध ली हो,
धरा के विहग ने गगन छू लिया हो।

कहूँ और क्या ? प्राणधन ! यह मिलन - क्षण,
मुझे ज़िंदगी की लगन बन गया है।
अँधेरी दिशा को किरण बन गया है,
निशा को सुबह की शरण बन गया है।

असम्वल हृदय को मिली धारणा है
कि अब ज़िंदगी वेसहारा नहीं है।
तुम्हें जो न समझूँ किनारा सहेली!
जगत् में वना ही किनारा नहीं है।

होली के दिन

ढोलक पर बैठी थाप, चंग ने रस के बोल गहे,
अब न रहा जाएगा तुमसे मन की बिना कहे।

बरस - बरस की ये दो घड़ियाँ, रंगोंवाली होली,
फूलों के शर मारे कोयल की अनव्याही बोली।

दुनिया घर से बाहर निकली, तुम भी बाहर आओ,
अंगों पर झेलो पिचकारी, प्राणों तक रँग जाओ।

रस में डूबो, आज लाज को पलकों में पी लो,
प्यासे अधर कमल बन जाएँ, कुछ यों भी जी लो।

उर का रीता घट दुलार के पनघट पर भर लो,
सबकी कही बहुत की, कुछ तो मन की भी कर लो।

फागुन का मौसम, बयार से बढ़कर बात करो,
फूलों के रिसते खुमार से बढ़कर बात करो।

घर में बैठो मत, गुलाब की महक बुलाती है,
इसके तन से आज प्यार की खुशबू आती है।

जुही, चमेली, हरसिंगार की कलियों को छू लो,
मंजरियों में बौरों - पत्तों पर झूला झूलो।

वे टेसू जो अंगारों की तरह दहकते हैं,
चिनगी - चिनगी में उमंग के सोते बहते हैं।

चलो हरे चम्पे से मन की मदिरा ले आएँ,
सरसों के सागर में जी भर डूबें - उतराएँ।

आज बहुत मन है कि पपीहे की बोली बोलें,
बातों - बातों खेल - खेल मन के बंधन खोलें।

दूर कहीं वे जो दीवाने फागुन गाते हैं,
रंगों - गीतों में प्राणों की तपन डुबाते हैं।

मैं भी इस दुनिया के हाथों बहुत सताया हूँ,
होली के दिन आज तुम्हारे द्वारे आया हूँ।

मैंने कितने हाथों अब तक देह रँगाई है,
लेकिन कोई बूंद प्राण तक पहुँच न पाई है।

इस गुलाल में मेरे मन की गंध न मिलती है,
यह रंगीनी परस प्यार का पाकर खिलती है।

इस उमंग में प्राणों की लाली घुल जाने दो,
जीवन को दुख-सुख की डाँड़ी पर तुल जाने दो।

गीत

एक आसरा मुझको अपनी आहों का,
और दूसरा तेरी चंपक बाँहों का।

जग ने इतना दाह दिया कोमल मन को,
मेरी कमजोरी से पहले झिला नहीं,
तब तक मैं आमूल अश्रु में डूबा था,
जब तक तेरा मुझे सहारा मिला नहीं,
पर, अब तो अपनी पीड़ा से प्यार मुझे,
तेरी करुणा इस पर छाँह किए बैठी,
तूने जो अपने आँचल से सोख लिए,
क्षरण है मुझ पर उन बदनाम प्रवाहों का।
एक आसरा मुझको अपनी आहों का,
और दूसरा तेरी चंपक बाँहों का।

मैंने कभी नहीं चाहा यह जीवन में,
दुनिया में मेरे गीतों की कीमत हो,
तुमने अपना लिया इन्हें, इतना काफी,
सबका मेरी मस्ती पर कोई मत हो।
अब तो कुछ ऐसा लगता मन को जैसे,
तुम्हें याद करना इसकी मजबूरी है,

भय भी लगता है कि कभी तुम बिछुड़ गए,
क्या होगा इसकी दीवानी चाहों का ?
एक आसरा मुझको अपनी आहों का,
और दूसरा तेरी चंपक बाँहों का।

दर्द-दाह ने मुझको जीना सिखलाया,
तुमने सुगम किया है कंटक-पथ मेरा,
दोनों का अहसान बहुत मेरे सिर पर,
मंज़िल तक पहुँचेगा जीवन-रथ मेरा,
तुमने प्रेरित किया मुझे मैं चलूं-जलूं,
एकाकी संभव था, हार गया होता !
संघर्षों में प्यार साथ हो जाए तो,
पग दो पग होता है योजन राहों का।
एक आसरा मुझको अपनी आहों का,
और दूसरा तेरी चंपक बाँहों का।

गीत

ये प्रतीक्षा के युगों-से पल नहीं भाते मुझे।

मिल गई है रात को वरदान-सी यह चाँदनी,
एक मेरा घर उजाले के नयन भूले हुए,
एक मेरे प्राण की पूनम अमावस पी गई,
चाँद के चन्दन-चरण मेरा गगन भूले हुए,
उम्र-सी लम्बी निशा, खाली दिशा, बेचैन मन,
जागरण के स्वप्न कितना दाह दे जाते मुझे !
ये प्रतीक्षा के युगों-से पल नहीं भाते मुझे।

क्या कहें उसकी व्यथा, तकदीर जिसके साथ हो ?
रात बीते, पर सवेरे की किरण झाँके नहीं,
फूल-कलियों पर उदासी की घटा छाई रहे,
धूप दुनिया पर खिले, मेरा चमन झाँके नहीं,
कौन यह दुर्भाग्य पहरा दे रहा मेरी गली में ?
कौन ये अभिशाप? क्यों दिन-रात कलपाते मुझे?
ये प्रतीक्षा के युगों-से पल नहीं भाते मुझे।

जानता हूँ मैं कि मेरी ही तरह लाचार तुम भी,
ये प्रतीक्षा के युगों-से पल तुम्हारे साथ भी हैं,

यह अँधेरी रात, यह सूनी डगर, धुँधली दिशाएँ,

यह कसक, यह दर्द की हलचल तुम्हारे साथ भी है,

मौन तुम सह लो, घटाओं से चुरा लो आँख चाहे,

बावले बादल तुम्हारे द्वार से आते मुझे।

ये प्रतीक्षा के युगों-से पल नहीं भाते मुझे।

गीत

आज न टोको, हाथ न रोको, जी भर पी लेने दो साकी !

जीवन - संघर्षो ने मेरा दीवानापन छीन लिया है,
वह भावुक मन छीन लिया है, वह मन का धन छीन लिया है,
इन्द्रधनुष के जिन रंगों से मैं जीवन के चित्र बनाता,
वह घर - आँगन छीन लिया है, रसवाला धन छीन लिया है,
भरा नहीं जो, वह क्या छलके ? घट भर भी लेने दो साकी !
आज न टोको, हाथ न रोको, जी-भर पी लेने दो साकी !

वह मस्ती कैसी मस्ती थी, मैं जिसमें डूबा गाता था,
तुम प्याला भर - भर लाते थे, मैं खाली करता जाता था,
प्यास नहीं थक पाती मेरी, हाथ नहीं रुक पाते तेरे,
हम मद - होश बहे जाते थे, सुख का सागर लहराता था,
जीने को तो मैं जीता हूँ, लेकिन जैसे घायल पाखी।
आज न टोको, हाथ न रोको, जी भर पी लेने दो साकी !

आज बहुत दिन बाद तुम्हारे दरवाज़े तक आ पाया हूँ,
देखो, कितनी प्यास प्राण के घट में संचित कर लाया हूँ,
और आज के बिछुड़े जानें, मिल पाएँ, मिल भी न सकें हम !
मैं एकाकी, यह लम्बा पथ, पग डगमग हैं, घबराया हूँ,
हो जितनी वारुणी पिला दो, बूंद नहीं रख लेना बाकी।
आज न टोको, हाथ न रोको, जी भर पी लेने दो साकी !

यह मदिरा अनमोल प्यार की, पी जिसने वह पार हो गया,
पी न सका जो कण भी उसको, यह जग-जीवन भार हो गया,
यह मदिरा पीकर कलियों में, वे देखो, भौंरे जीते हैं,
मैं जीवित हूँ, पर जीवन्मृत, वह मेरा संसार खो गया,
फिर जी लूं मैं, फिर पी लूं मैं, फिर सज ले जीवन की झाँकी।
आज न टोको, हाय न रोको, जी भर पी लेने दो साकी!

गीत

सौरभ के कोष खुले, फूल - फूल खुल खेला,
गाने लाचार हुआ मन - पंछी अलबेला,
सौरभ के कोष खुले।

साधों के स्रोत जगे, सुधियों की भीड़ लगी,
प्राणों का धीर गया,
इन्द्रधनुष पर धरकर काम - तीर, कौन ढीठ !
मेरा मन चीर गया,
चंचल चल - अचल हुए, री ! बरखा की वेला।
गाने लाचार हुआ मन - पंछी अलबेला।
सौरभ के कोष खुले।

कोयलिया बोल रही, रस के घट घोल रही,
प्राण - धीर तोल रही,
फूली अमराई में, नेह - भरी, दीवानी,
डाल - डाल डोल रही,
मैं उदास, बसकर भी उजड़ गया हर मेला।
गाने लाचार हुआ मन - पंछी अलबेला।
सौरभ के कोष खुले।

मैं उदास, क्या गाऊँ? कोयल के मधुर गीत?
बिजली की केलि-कला?
कल के वे झरे फूल? वृंत-वृंत या कि मूल?
धार मिली, तट न मिला।
मैं उदास दो क्षण का जीवन का यह रेला।
गाने लाचार हुआ मन-पंछी अलबेला।
सौरभ के कोष खुले।

गीत

अब न आऊँगा तुम्हारे द्वार, यह अंतिम चरण है।

भूख आँखों की हृदय को दे गई थी रात काली,
हाय री छलना ! अमावस को समझ बैठे दिवाली,
तुम मरुस्थल की घटा, छल की कथा, भ्रम की कहानी,
तृप्ति तुमसे माँगने दौड़ी तृषा मेरी दिवानी,
लौट आई हार बारम्बार, यह अंतिम चरण है।
अब न आऊँगा तुम्हारे द्वार, यह अंतिम चरण है।

क्या कहूँ, संसार का दस्तूर ही है यह पुराना,
आग देना जानता है, पर, नहीं सीखा बुझाना,
सिंधु से कितना कहा, "रुक जा अभागे ! पा सकेगा?
चाँद पत्थर है, इसे मनुहार से पिघला सकेगा ?
टूटने दे, स्वप्न है संसार," यह अंतिम चरण है।
अब न आऊँगा तुम्हारे द्वार, यह अंतिम चरण है।

आज दुर्बलता नहीं जिसने तुम्हें फिर-फिर पुकारा,
पा लिया मेरे हृदय ने आँख से ओझल किनारा,
बन्द रखना द्वार, थपकी अब नहीं देगी सुनाई,
मानिनी ! मंज़िल मुझे दे दी, तुम्हें मेरी बधाई,
आज अंतिम बार मेरा प्यार, यह अंतिम चरण है।
अब न आऊँगा तुम्हारे द्वार, यह अंतिम चरण है।

नारी

कितने चित्र बने, बन-बनकर बिगड़े होंगे,
कितनी प्रतिमाओं के नव सँवारे होंगे,
बार-बार तुमको रचने की कोशिश होगी;
जाने कब तक राई-नोन उतारे होंगे!

कितनी जिज्ञासा, आशा, अभिलाषा लेकर,
युग-युग तक भावना कला की रही दिवानी,
और एक दिन जब तुम पहली बार हँसी थीं,
फूल पड़े होंगे ब्रह्मा की मुख से छाती।

फूलों ने तुमसे मुसकाना सीखा होगा,
श्याम घटाओं ने लहरे केशों से कुन्तल,
तुम आई जैसे नन्दन-सी छू-छू चलती
धरती पर उतरी गंगा की धार पावन।

रीझ गया सौन्दर्य स्वयं देखा जो तुमको,
कोमलता ने अरुन चरन छू लिए सहेली!
हारे दर्शन, कला, ज्ञान, विज्ञान, धर्म, तप,
तुम न सुलझ पाई पर, कैसी गूढ़ पहेली!

मादक हो, पूर्णिमा नहीं है इतनी मादक,
शीतल हो सखि ! भोर नहीं है इतनी शीतल,
दाग चाँद में, तुम परिपूर्ण रूप ही जैसे,
उपमा कहाँ जिसे बतला दूँ तुमसे उज्ज्वल !

नयना दो, दो सागर भरे सुरा के मानो,
नीले, गहरे, हृदय डूबकर उछर न पाता,
बोझिल पलक पुतलियाँ ढाँके मुँदते - खुलते,
जैसे कोई कमल सिहर बाँहें फैलाता।

केश - पाश, छहरे सावन के मेघ सलोने,
कनक-कपोल, लजाई ऊषा विस्मित, अपलक,
हँसी एक पल, जैसे बीहड़ तममय वन में,
हँसीं हज़ारों एकसाथ बिजलियाँ अचानक।

रजनीगंधा की फूली टहनी - सी काया,
अंग - अंग नभ - गंगा की लहरों - सा चंचल,
छू दो तुम, चट्टानों में सिहरन भर आए,
जिधर देख लो, खिल जाएँ दल के दल पाटल।

आई लाज, लाज को देख लजाना तेरा,
स्वर मधुमयता को मानो माधुरी मिल गई,
निखिल चेतना ही जैसे प्रिय ! मूर्त रूप धर,
धरती पर उतरी, जड़ता की नींव हिल गई।

हार रही कल्पना, लेखनी बौराई - सी,
थके शब्द, कुंठित अभिव्यंजन की क्षमता,
लाई सुहाग की लाली छीन मृत्यु से भी
इतिहास न बतला पाएगा इसकी समता।

साहस, नैतिकता, स्वयं अग्नि हो गई राख,
हिम की धाराएँ सती ! तुम्हें न गला पाई,
अड़ गई जहाँ, झुक गई हिमालय की दृढ़ता,
हँसकर पी गए गरल, तुमने ली अँगड़ाई।

साम्राज्य चरण चूमते, मुकुट झुक गए त्रस्त,
अभिमानी तलवारों का सूख गया पानी,
चितवन-शर एक, पालतू भीषणतम बर्बरता,
दाँतों में कुश दाब वज्र करते अगवानी।

त्याग, मोह प्राणों से बढ़कर किस पर होगा ?
एक नहीं, दो नहीं, अपितु सोलह सहस्र थीं,
महाकाल के प्रलयंकारी हवनकुण्ड में—
गिरनेवाली लोहू की धारा अजस्र थीं।

रोली नहीं पोंछने दी तुमने मस्तक से,
जला दिया कोमल कलियों-सा मादक यौवन,
लाल-लाल लपटों के धू-धू अनल-जाल में,
हँस-हँस कूदीं, और न था अधरों पर रोदन।

माँ हो तुम, नतमस्तक हूँ असीम श्रद्धा से,
तुमसे मुझे मिली है जो कण-भर भी ममता,
अलका का साम्राज्य, विश्व-भर का सुख-वैभव,
नहीं मानता कर पाए इस धन की समता।

मेरा जीवन-शिशु तेरी गोदी में खेला,
'मैं' तेरी भावना रूप धर आई मेरा,
तेरे सारे स्वप्न बन गए काया मेरी,
हृदय बना बैठा छाती में चिन्तन तेरा।

साधे हुए शीष पर जब तक तेरा वर कर,
श्रृंगों से टकरा जाने में मुझे नहीं भय,
जीवन की यह ज्योति एक पल जल न सकेगी,
जो न मिले तेरे दुलार का पावन प्रश्रय।

बहना हो, यह चार सूत के कच्चे धागे,
द्वेष, घृणा, आडम्बर की दुनिया से ऊपर,
सारे वर्ग - विभेद चूर कर बँध जाते हैं,
पौरुष की प्रेरणा, थके मन की गति अक्षर।

तुम खेलीं साकार प्रकृति भू के आँगन में,
मुग्ध हुए हम सुन तेरी तुतलाती बोली,
पवन भिखारी बनकर सुरभि माँगने आया,
यौवन - मदिरा में भीगी वेणी जब खोली।

और कहाँ तक करूँ तुम्हारा गौरव - अंकन,
जिसे स्नेह दो तुम, वह तुलसी बन जाता है,
अंगारा हो और तुम्हें छूकर जल जाना,
जाने क्यों इन पागल प्राणों को भाता है!

कल्याणी! सौन्दर्य गर्व करता है तुम पर,
क्यों कृत्रिमता? रँगे अधर, यह क्षुद्र प्रसाधन!
स्वाभाविक अरुणिमा कपोलों की, अधरों की,
बाल-अरुण से अधिक विरल, आकर्षक, शोभन।

लील न जाए पाशवता नारीत्व तुम्हारा,
खो न जाय झूठी सज - धज में शील - सरसता,
लपटों से खेलो, नयनों से ज्वाला उगलो,
क्षार हो सकें द्वेष, घृणा, जीवनमय कटुता।

तुम प्रारब्ध वदल सकती हो मानवता का,
एक वार जो ललकारो झाँसी की रानी !
क्या नर? पशु? भरकर सकरुण ममता जो दृग में,
देखो तुम, जड़ पत्थर तक हो जाए पानी।

युग बीता, नवयुग का नूतन अरुण सवेरा,
झाँक रहा है, नई रश्मियाँ मचल रही हैं,
बीत गए दिन परवशता के, उत्पीड़न के,
देख रहा हूँ, मेरी दुनिया वदल रही है।

तुम मेरी गति वनो, तुम्हारा मैं संरक्षण,
तुम मेरी रागिनी, वीण मैं वनूं तुम्हारी,
गूंज उठे अद्वैत प्राण से जीवन - सरगम,
हम दोनों मिल वन जाएँ जग की उजियारी।

तुम पर अवलंवित भावी जीवन - तरिणी का,
तुम पतवार पुरुष के कर डाँड़ों पर चलते,
वह वनता वाती, तुम वनीं स्नेह की धारा,
इसी समन्वय की गरिमा के दीपक जलते।

जिनका चिरआलोक विखर जाता अग-जग में,
छा जाया करती दोनों के तप की लाली,
देवि ! तभी पतझर से मुरझाई धरती पर—
खिलती है नवभोर सुनहले फूलोंवाली।

किरण वनीं तुम, पुरुष हिम-शिला वनकर गलता,
धरा उर्वरा वनती इस निर्झर के जल से,
सावन - सी, संसृति पट जाती हरियाली से,
उठ आते ऊपर मोती सागर के तल से।

जग को प्रीति-प्रबोध दिए जाओ चिरसंगिनि !

मैं मशाल लेकर चलता हूँ साथ तुम्हारे,

मानवता की ज्योति न बुझने पाए पल-भर,

अट्टहास कर अब न टूट पाएँ अँधियारे।

गीत

सबको हँसी सुहाई मेरी, मन की पीर न जाना कोई।

जग ने देखा कवि गाता है, दुनिया का मन बहलाता है,
कितनी खुशी मिली है इसको, यह सुख में डूबा जाता है,
पर, जग को मुसकाने दे जो, उसने बस आँसू पाए हैं,
लोहू को अरुणाई समझा, चुभते तीर न जाना कोई।
सबको हँसी सुहाई मेरी, मन की पीर न जाना कोई।

हर हारे मन का सम्बल जो, हर सूखे वन का बादल है,
हर अँधियारे घर दीपक जो, हर वीराने की हलचल है,
वह कितना सूना-सूना है, पल-पल दुख दूना-दूना है,
जग को मुक्ति-दान दे, उसके पग जंजीर न जाना कोई।
सबको हँसी सुहाई मेरी, मन की पीर न जाना कोई।

मुसकाया तो निशा ढली है, हर मुरझाई कली खिली है,
साँस-साँस गा उठी प्रभाती, जड़ता को चेतना मिली है,
पाहन तक में प्राण भरे जो, दुनिया की तकदीर जगाए,
उस कवि से भी सदा रही रूठी तकदीर, न जाना कोई।
सबको हँसी सुहाई मेरी, मन की पीर न जाना कोई।

तानसेन के प्रति

स्वर के राजा ! तुमने वाणी में कैसी शक्ति जगाई थी,
सुनकर पपीहरे लुटे-लुटे, कोयल बैठी शरमाई थी।
संगीत तुम्हारा जादू था, शेरों ने मस्तक झुका लिया,
सारा आलम सुध-बुध भूला, सारी दुनिया भरमाई थी।

कहते हैं जब तुम गाते थे, बुझते दीपक जल जाते थे,
बेमौसम मेघ बरसते थे, पानी की झड़ी लगाते थे।
फूलों पर खून झलक आता, कलियाँ जवान हो जाती थीं,
पत्थर पानी हो जाते थे, कहते हैं जब तुम गाते थे।

है कला अजब सागर इसमें जो डूब गया, वह पार गया,
जो जितनी पीर सहेज सका, वह उतना कर्ज़ उतार गया।
तुमने यह पीर सहेजी थी, तुमने यह पावक पाया था,
जिसका उभार इस दुनिया को कल्पों के लिए सँवार गया।

संगीत तुम्हारा दुनिया के बहते घावों को मरहम था,
जिसको स्वर का वरदान मिला, बाकी न रहा कोई गम था।
रोनेवाले मुसकाते थे, खोनेवाले पा जाते थे,
संगीत तुम्हारा मुर्दों को जीवन दे ऐसी सरगम था।

जीवन-बसंत

सूनी, उजड़ी अमराई में फिर एक बार
अनुराग - राग-रँग - रँगी मधुर कोयल बोली।
तरुवर - तरुवर को फिर मिल गई जवानी है,
सूखे सुमनों ने फिर चंचल पलकें खोलीं।

पुलके पल्लव, अँगड़ाई लेतीं वल्लरियाँ,
चहके पंछी, आँगन - आँगन रस - रास हुआ।
मधुवन महके, मन बहके, थकी शिराओं में—
लोहू की लहरों का फिर मादक लास हुआ।

फुनगी - फुनगी अरुणाभ हो गई है, मानो
वसुधा के पूत - प्रणय की हों पीकें फूटीं।
जर्जरा - पुरातनता की केंचुल बदल गई,
नूतनता नई चेतना ले गत पर टूटी।

परिवर्तन की बलशाली दीर्घ भुजाओं से—
पतझर की चट्टानों - सी जड़ता चूर हुई।
है कौन कि जिसके एक इशारे पर केवल,
सूखी बगिया खिल पड़ने को मजबूर हुई ?

लग रही धरा की गली-गली है वृन्दावन,
हर युवक कन्हैया, हर युवती राधारानी।
परिचय, परिणय, रूठने - मनाने की वेला,
पी रहे नयन प्यासे, दे रहे नयन पानी।

वरसी है अजव खुमारी नीरव प्राणों पर,
सबके सँग नाच उठा है मेरा पीड़ित मन।
आँखें टकटकी लगाए, सिंदूरी संध्या,
अँधियारे की वाँहों में ढील रही है तन।

मैं सोच रहा हूँ, कल धरती वीरानी थी,
पतभर था, सूखी - सूखी यह फुलवारी थी।
कोयल उदास, वेचैन वुलवुलों के दिल थे,
खामोश पपीहे, मौन मधुर किलकारी थी।

सहमी दुनिया को आज नया शृंगार मिला,
कलियाँ चटकीं, मदहोश चमन सरसाए हैं।
फूलों के मंजुल प्यालों में भर - भर पराग,
दानी वसंत ने मधु के घूंट पिलाए हैं।

मैं सोच रहा हूँ, कल फिर उजड़ेगी वहार,
रेगिस्तानी आँधियाँ जगत् झुलसाएँगी।
धू - धू जलने लग जाएगा यह आसमान,
नववधू धरा कल फिर उदास हो जाएगी!

मैं सोच रहा हूँ, रे! ऐसा क्यों होता है,
क्यों झर जाने हर कली खिलाई जाती है?
क्यों सावन के घन मचल-मचल घिर आते हैं,
अंगारों की वरखा वरसाई जाती है?

ढल रहा सूर्य, है जन्म ले रहा नया चाँद,
दोनों तेजस्वी, साथ - साथ हैं जन्म - मरण।
अवसान-उदय दोनों निश्चित गति से, क्रम से,
करते हैं सदा - सदा से संसृति का नियमन।

परिवर्तन-प्रगति सृष्टि का है अविचल विधान,
सुख-दुख,यश-अपयश,हानि-लाभ,रोदन-गायन।
कितनी छोटी-सी बात कहानी दुनिया की,
परिवर्तन सरिता, दुख-सुख कूल, तरी जीवन।

ठूँठ और वृक्ष

हरे-हरे कोमल पातों के पहने वसन निराले,
झूल रहे झूला समीर का कुछ तरुवर मतवाले।
नया-नया सावन पाया है, नई-नई तरुणाई,
तना गर्व से शीष, पास विजली जो अभी न आई।
लिपटीं तन से युवती-वल्लरियों की कोमल वाहें,
नया-नया अनुभव है, अव तक पास न आई आहें।
पास वहीं पर एक ठूँठ है, पल्लवहीन, दिगंवर,
उजड़ा-उजड़ा तन है लेकिन निस्पृह मन है उर्वर।
निरासक्त, निर्वंध, प्राण की सद्गति का अभिलाषी,
दूर विभव की तम-छाया से, तपःपूत, अविनाशी।
एक रात वोले सव तरुवर, "रे कुरूप, अपशकुनी,
देख-देख जलता है हमको, भोग रहा निज करनी।
पल्लव छिने, छिनी तरुणाई, रूप गया अभिपापी,
स्वाभाविक है जलन तुम्हारे अन्तर को जो व्यापी।"
ठूँठ हँसा, आँखों के आगे नाचीं जीवन-सुधियाँ,
(जो अव पाईं इनसे महँगी नहीं, लुटीं जो निधियाँ)
वोला, "मैं भी देख चुका हूँ तुम-से दिन मतवाले,
मैंने भी वाले थे मन में दीपक साधोंवाले।
मैंने भी मादक मदिरा के रिक्त किए हैं प्याले,
मेरे प्राणों से भी फूट वहे सुधियों के छाले।

लतिकाओं की मृदु बँहियाँ, भ्रूभंग, अधर की हाला,
साँसों पर साँसों के उन्मद आतप की मधु ज्वाला।
प्राणों से, प्राणों के परिणय की मतवाली घड़ियाँ,
जीवन के आँगन में सावन के मेघों की झड़ियाँ।
सोने के चमकीले दिन, रूपे की उजली रातें,
प्राणों का पाखी करता था आसमान से बातें।
लिप्त, किन्तु निर्लिप्त रहा मैं जल में खिले कमल-सा,
सब मुझमें मिल गए, शेष मैं निर्मल गंगाजल-सा।
कितना चला - जला, जीवन का शुभ्र सत्य पहचाना,
मिट्टी का तन, मिट्टी का मन, मिट्टी ताना - बाना।
दुनिया का क्रम देखा - समझा, सदा वसन्त नहीं है,
कितने पथिक थके पर मिलता पथ का अन्त नहीं है।
कितने फूल जवान यहाँ पर प्रतिदिन झर जाते हैं,
मरघट, कितने चमन तप्त-सिकता से भर जाते हैं।
सूरज - सा तेजस्वी काल - तिमिर से जीत न पाता,
जीवन से विभ्राट मरण का अविनश्वर है नाता।
ज़रा धूप हो गई तुम्हारे पात झुलस जाते हैं,
कड़के बिजली तनिक कि सहमे नयन बरस जाते हैं।
मुझे जला दे, किसी धूप में इतनी तपन नहीं है,
झुलसे मेरा गात, किसी रवि के घर किरण नहीं हैं।
मेरी प्रखर साधना साथी! समझो, व्यर्थ नहीं है,
भय दे मुझे, कि कोई झंझावात समर्थ नहीं है।
मुझे नहीं कोमला लताओं की चितवन ललचाती,
सावन के बादल न बुलाते, धूप न तन झुलसाती।
तुम कोलाहल के वासी, मैं निर्जन का संन्यासी,
दुख - सुख में जीवन की सम्यक् गति का मैं अभ्यासी।
कालकूट तुम पचा न सकते, सदा सुरा पर निर्भर,
मधु - सा लगे हलाहल मैं हूँ नीलकंठ प्रलयंकर।

मरकर विजय मृत्यु पर पाऊँ, वह चलनेवाला हूँ,
लाख प्रदीप जलाऊँ बुझकर, वह जलनेवाला हूँ।
तन की सुन्दरता पर मेरी नहीं आस्था कण-भर,
मन की सुन्दरता पर मेरी सब श्रद्धा न्योछावर।
मन कुरूप तो व्यर्थ रूप-सम्मोहन की यह माया,
मन सुन्दर तो ज्यों युग-युग का तप सार्थक हो आया।
किस पर अहंकार? हरियाली! यह पतझर की दासी,
वल्लरियाँ? इनके यौवन की पीछे वही उदासी।
सावन-घन! ये आतप की भूमिका बने आते हैं,
इनकी बूँद-बूँद के पीछे शोले मुसकाते हैं।
तुम्हें प्यार है तन की मंजुल हरी-हरी छाला से,
मुझे प्यार है प्राणों में पलती प्रमत्त ज्वाला से।
तुमने, जो कुछ मिला, सहेजा, मैंने सदा लुटाया,
पल्लव-पल्लव दिया, न लेकिन कभी हृदय अकुलाया।
सुख जितना बाँटो, वह निश्चित दुगुना बढ़ जाता है,
दाह समेटो जितना, सुख के वह समीप आता है।
अंकुर, तरुवर, द्विपद, चतुष्पद, सब मिटनेवाले हैं,
हर उपवन की रूप-राशि के पतझर रखवाले हैं।
सोचो तो, फिर वह क्या है जो बाकी रह जाता है!
क्या है वह जो बार मौत का हँसकर सह जाता है!
जो कुछ दिया, लुटाया, उतना बाकी रह जाता है,
जो संग्रह करते हो काल-सरित् में बह जाता है।
क्यों समेटते हो, जितना जो भी है, उसे लुटाओ,
बाँटो-बाँटो, इस मिट्टी का पूरा कर्ज़ चुकाओ।
कैसा मोह! सभी बन्दी परिवर्तन की कारा में,
बहते चलो सभी के बनकर सम्बल भव-धारा में।"

हारे हुए राही से

"कौन हो तुम? क्यों झुकाए शीष बैठे हो?
कौन बिजली है कि जो मन को जलाती है?
कौन पीड़ा है, नयन जो कर गई गीले?
क्या हुआ मुसकान अधरों तक न आती है?
कौन अंगारे हृदय में जल रहे ऐसे?
कौन-सी उलझन कि आगे चल नहीं सकते?
यह नहीं पहला अँधेरा है कि जिसके पास—
थरथराते हो, धधककर जल नहीं सकते।
और भी कैसी भयानक आँधियाँ आईं,
नाव ऐसी तो न लेकिन डगमगाई थी।
हाथ से चप्पू नहीं छोड़े कभी तुमने,
मिट गए, पर मौत से मुँह की न खाई थी।
सिंधु ने टोका, पहाड़ों ने तुम्हें रोका,
तुम सदा संग्राम की जय बोलते आए।
रात ने कितना तुम्हें बाँधा हज़ारों बार,
रोशनी के द्वार पर तुम खोलते आए।
आज ही ऐसा हुआ क्या है, कि तुम बेचैन
पंथ से हारे हुए, भयभीत रोते हो?
कुछ कहो, मैं हर सकूँ शायद तुम्हारी पीर!
कुछ हँसो, क्यों आँसुओं से मन भिगोते हो?"

"आदमी हूँ, युद्ध से हारा हुआ हूँ मैं,
हौसला टूटा, हृदय टूटा हुआ मेरा।
ज़िंदगी-भर एक आँधी ने मुझे घेरा,
क्या कहूँ, बस, भाग्य ही फूटा हुआ मेरा।
धूप, जलती धूप ही मेरी सहेली है,
एक पल भी प्राण तक छाया नहीं आई।
ज़िंदगी मेरी मरुस्थल की कहानी है,
एक नन्ही बूंद साधों को न मिल पाई।
तुम हँसोगे, सोचता हूँ दो बची साँसें,
इन बहारों में बसूं, विश्राम ही कर लूं।
दो घड़ी इन फूल-कलियों का सहारा लूं,
गंध से, मकरंद से मन की गली भर लूं।
और सोचो भी, रहूँ कब तक व्यथा सहता,
कर्म के तूफान में बहता चला जाऊँ?
दो सुधा के घूंट मादक मिल नहीं पाएँ,
क्यों ज़हर की आग में दहता चला जाऊँ?
सच कहूँ, इन आँधियों से मैं नहीं हारा,
आज अपनी प्यास से हारा हुआ हूँ मैं।
लालसाएँ खींच लाई हैं मुझे पीछे,
भोग की तलवार का मारा हुआ हूँ मैं।"

"आदमी हो, अब किनारा चाहते हो तुम!
सच कहा, क्यों ज़िंदगी-भर पीर झेलोगे?
कूल पर आकर भले डूबो तुम्हें क्या है!
आज तो तुम तृप्ति से जी खोल खेलोगे!
हाय, इतना तुम न लेकिन जान पाए हो,
तृप्त होना है पिपासा को बढ़ा लेना।

साथ मरकर भी न छोड़ेगा तुम्हारा जो,
एक ऐसा बोझ ही सिर पर चढ़ा लेना।

तृप्त होना है अगर तो प्यास को पी लो,
दर्द बढ़ने दो, यही मुसकान बनता है।
हर मुसीबत एक दिन सम्मान बनती है,
हर थपेड़ा एक दिन वरदान बनता है।

एक छोटी बात कहना चाहता हूँ मैं,
हार के आगे अगर माथा झुकाओगे।
एक सपना भी न पूरा कर सकोगे तुम,
और क्या आदर्श जग में छोड़ जाओगे?

ज़िंदगी-भर बिजलियों से जो नहीं खेला,
मौत के जिसने नहीं गलबाँह डाली है।
वह जिया बेकार जिसने मुक्त लहराती,
आदमीयत की ध्वजा नीचे झुका ली है।

हिमालय के आँसू

दर्द यह कैसा हिमालय ! आज यह कैसा रुदन है ?
क्या हुआ जो सिसकियों के भार से बोझिल पवन है ?
गल रहा चट्टान का तन आज क्यों बनकर हिमानी ?
वज्र-से मन में जगी कोई दबी पीड़ा पुरानी ?
चोट गहरी है, इसे मेरा हृदय पहचानता है,
क्योंकि दुनिया की व्यथा में मुक्ति अपनी मानता है।
आँख से छलका हिमालय ! अश्रु जो पहला तुम्हारा,
दे गया सहसा किसी भूचाल का मुझको इशारा।
वह चलीं नदियाँ उछल छल-छल, विकल निर्झर चले हैं,
अश्रु-जल है, पर, मुझे हर बूंद में शोले मिले हैं।
प्राण की ज्वाला पिघलकर आँसुओं में ढल रही है,
आदमी के दर्द की कोई कहानी चल रही है।
मैं न सुन पाता, मगर संवेदना सब सुन रही है,
अश्रु कितने गिन रही है, दाह कितना, गुन रही है।
पढ़ रहा हूँ मैं तुम्हारी वेदना की मूक भाषा,
दे गई है आग मेरे प्राण को तेरी पिपासा।
और तेरे साथ मेरे गान गीले हो गए हैं,
राग भारी हो गए, अरमान गीले हो गए हैं।
हाँ, मगर मैं स्वाभिमानी, दृग बहा पाता नहीं हूँ,
गर्व हूँ, रोकर हृदय का दर्द गा पाता नहीं हूँ।

आँधियों में दीप जीवन का कमल-सा खिल रहा है,
स्वर्ग का आसन धरा की गर्जना से हिल रहा है।
किंतु तब में, आज में कितना बड़ा अन्तर हुआ है,
आदमी भीतर धुना, बाहर भले उर्वर हुआ है।
भू-गगन बाँधे, उदधि बाँधा, दिशाएँ बाँध लाया,
एक अपनी ही पिपासा नर न अब तक बाँध पाया।
दो हृदय के बीच कितना भेद की दीवार आई,
शक्ति ने अपने लहू को रौंदने भेरी बजाई।
धर्म ने चाहा अमित नर का अँधेरा पथ बदल दे,
कर्म ने चाहा हृदय की राह के काँटे कुचल दे।
ज्ञान की गंगा बही, इसके कलुष पर धुल न पाए,
अनसुनी कर बढ़ गया यह दंभ की ग्रीवा उठाए।
राम का पौरुष जगा, घनश्याम की गीता जगी थी,
स्नेह का वरदान ले राधा जगी, सीता जगी थी।
बुद्ध-गांधी की तपस्या, सूर-तुलसी का तराना,
खाल खिचवा दी, इसे 'तबरेज' ने चाहा जगाना।
युद्ध - हिंसा, पाशविकता का, घृणा का क्रम न बदला,
चढ़ गए सूली सहज ईसा, मगर आदम न बदला।
निर्वसन तन पर वसन, पर मन अभी तक निर्वसन है,
नग्न प्राणों पर न कोई सभ्यता का आवरण है।
तर्क है, श्रद्धा नहीं, विश्वास का संबल नहीं है,
आदमी के पास पावन प्यार का आँचल नहीं है।
रो रहे हो तुम हिमालय ! घाव कुछ ज्यादा हरे हैं,
सृष्टि के शव पर तुम्हारे अश्रु अक्षत-से झरे हैं।
बिजलियों की यह कड़क, काली घटाएँ आ गई हैं,
चाँद-तारों पर निराशा की परत-सी छा गई है।
कुण्डली मारे तिमिर की सर्पिणी फुफकारती है,
क्रुद्ध झंझावात, प्राणों की बुझी - सी आरती है।

पर हिमालय ! ओ पुरातन विश्व - मानव के पुजारी !
व्यर्थ जाएगी नहीं संवेदना निश्छल हमारी ।

आज भी मेरा अटल विश्वास, आएगा सवेरा,
जगमगाएगा नये आलोक से आकाश तेरा ।